THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180413
UNIVERSAL LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H 83 P 91 T

Accession No. ~~G H 17~~ G H. 1270

Author

Title

This book should be returned on or before the date las marked below.

विज्ञप्ति

नारी को जिसदिन चेतना हुई, तो उसने पाया, वह बन्धनों में जकड़ी है। कड़ियों के बीच अपने को पाकर, उसने सारी सृष्टि को कातर नयनों से देख लिया। हाय, नारी असमर्थता की मूर्त्ति थी!

और तब, सूनी घड़ियों में, उसने अपने हृदय के बीच कुछ गति का अनुभव किया। नारी सोचती रही: समझती भी रही। यह चिन्तन, यह मन्थन, एक दिन अमृत या गरल उगलकर ही रहा।

समय का चक्र बड़ी तेजी से घूम रहा था। नवीन युग पुरातन युग को बहुत पीछे छोड़ आया था।

एकदिन नारी रुकी। रुककर ज्योंही उसने अपने को देखा, वह स्तंभित रह गई। कड़ियाँ टूट चली थीं, बन्धन ढीले पड़ रहे थे। हवा का शीतल झोंका आज प्रथम बार नारी के मन-प्राण को स्पर्श कर सका था।

दूसरी ओर, पुरुष, माथे पर बल डालकर सोच रहा था—'यह अच्छा ही हुआ। भित्ति कमजोर थी। गिरने का डर था। कमजोर नीव पर इमारत कबतक टिक सकती है?'

'टूटती कड़ियाँ' आज के युग की इन्हीं कुछ समस्याओं को देखने का प्रयास है। यह प्रयास युग-धर्म और प्रगति के साथ है।

उपन्यास के प्रायः सभी पात्र अन्तर्द्वन्द्व की परिधि में हैं। बलवन्त का चित्रण मनोविज्ञान की नींव पर है। पाठक पूछ सकता है—'आखिर बलवन्त है क्या?' मैं उत्तर दूँगा—'वह मनुष्य है, ऐसा मनुष्य—जो अति-मानव नहीं है। वह पूरी समर्थता के साथ इस उपन्यास में आया है।'

आत्म-विश्वास के साथ मैं 'टूटती कड़ियाँ' उपस्थित कर रहा हूँ। और, ईमानदारी के साथ मैं कहना चाहता हूँ कि उपन्यास की धारा से मैं अपने को न बचा पाया हूँ।

विनीत

राधाकृष्ण प्रसाद

टूटती कड़ियाँ

[एक]

आशारानी ने भी सुना—ब्याह होना चाहिए। सुनकर वह चुप रह गई। उपन्यास पढ़ने में मन नहीं लगा। चेहरे पर कुछ लकीरें आईं; आँखों में कुछ सूनापन आया।

महरी आई। बोली—"क्यों बिटिया, अबतक नहाने नहीं गई? टब में पानी भर गया है। मैं तुम्हारे आने की बाट जोह रही थी।" आशा चुप रही।

महरी बोली—"बिटिया, एक बात सुनती हूँ। सुना, ब्याह करीब-करीब पक्का ही हो गया है। घर-वर सभी अच्छा है। बड़े भारी...।"

आशा ने बीच में ही टोका—"चलो, नहाने आती हूँ।" और

जब भोजन की थाली में खाना ज्यों का त्यों पड़ा रह गया तो माँ ने पूछा—"जी क्या भारी है बेटी ?"

"हाँ अम्मा..." कह दो घूँट जल निगल वह अपने कमरे की ओर बढ़ गई।

कमरा बन्द कर वह पलंग पर लेट रही। आँखें दीवार की तस्वीरों पर इस तरह अड़ी रहीं मानो उनसे समस्या का निधान निकाल रही हों!

चित्र कई हैं। सामने किसी जिप्सी युवती का चित्र है। एक चित्र में बादलों का दृश्य है। उमड़ते हुए घनघोर बादल...! उससे कुछ हट कर एक पंछी की तस्वीर है जो शून्य विस्तृत आकाश में उड़ा जा रहा है...उड़ा ही जा रहा है।

आशा की आँखों ने देखा और पाया कि वह भी उस पंछी की तरह आज असहाय और कातर है!

...क्या करे वह? ब्याह...यह बन्धन? तो क्या वह अविनाश को, उस अविनाश को जिसे अपने हृदय की सारी समर्थता के साथ चाहा है, भूल जाय? अपनी चिर संचित अनुभूतियों को एक दिन, चुपके से उसने उस अविनाश के प्रति उड़ेल दिया था। आज क्या वह उस उतने बड़े सत्य से अपनी दृष्टि फेर ले?...

आशा की आँखें छलक आईं।

और यह अविनाश...

चित्र धुँधले दीख पड़ते हैं। समय के प्रवाह ने उन पर आव-

रण डाल रक्खा है: फिर भी वह क्या आशा की आँखों को भुलावे में डाल सकता है ?....

आज से दस साल पहले की यवनिका उठती है।

बँगला छोटा होने पर भी सुन्दर है। युक्लिपटस के वृक्ष चारों ओर हैं। क्यारी के पौधे अधिकतर विदेशी हैं। गुलाब के लाल फूल भी खिले हैं।

पिता की बदली हुई है। वे सब-जज होकर इस नगर में आये हैं।

आशा फ्रॉक पहने है। वह तितलियों के पीछे दौड़ती है, किन्तु हैरान होकर थक जाती है। साथी कोई नहीं है। 'बेब' (आशा का छोटा भाई) अभी डेढ़ साल का है। उससे तो खेला नहीं जा सकता। वह रोता अधिक है: फिर वह बोल और दौड़ भी नहीं सकता!

फाटक के बाहर आकर आशा देखती है—आसपास केवल बँगले हैं...खुशनुमे बँगले! दोपहर का सन्नाटा बेहद अखरता है। पापा ड्यूटी पर हैं। माँ सोई है। आया बच्चे को बहला रही है।

और इसी बीच वह एक लड़के को देखती है। लड़के की उम्र बारह साल की होगी। वह पैंट और हाफ--शर्ट पहने है। हाथ में स्याही लगी है: कुछ धब्बे अधमैले पैंट पर भी हैं।

आशा के मन में बहुत कुछ आता है। वह पुकार उठती है—"ओ...सुनो जरा....!"

लड़का निर्विकार भाव से आ खड़ा होता है। आशा उसे अपने बहुत समीप पा चुप हो जाती है।

लड़का पूछता है—"किस लिए बुलाया ?"

आशा चुप है।

"मुझसे कुछ काम है ?"

आशा चुप ही है।

"गूँगी हो ?" लड़का खिलखिला पड़ता है।

इस बार आशा पूछती है—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"अविनाशचन्द्र गुप्ता....।"

"हूँ...।" बुजुर्ग की तरह आशा देखती है।

लड़का पूछता है—"और तुम्हारा...?"

"कुमारी आशारानी भटनागर...।"

"ओ हो...तब तो तुम रानी हो।"

लड़की झेंप जाती है।

कुछ क्षणों बाद लड़की पूछती है—"तुम रहते कहाँ हो ?"

लड़का ऊँगली से इशारा कर बतलाता है—"इस बँगले के बाद मेरा बँगला है।" और वह चलने को पैर बढ़ाता है।

"जा रहे हो ?"

"हाँ, टिफिन की छुट्टी थी।"

"किस क्लास में पढ़ते हो ?"

"नाइन्थ....।" लड़के की आँखों में गर्व है।

लड़की अपनी हीनता से शायद कुछ लजा जाती है।

लड़का पूछता है—"तुम पढ़ती हो ?"

"हाँ, घर ही पर चौथी की किताब पढ़ती हूँ।"

फिर कुछ क्षणों के लिए चुप्पी।

"अच्छा नमस्ते महारानी आशा देवी...।" लड़का हाथ जोड़ कर आगे बढ़ता है।

लड़की की भृकुटि तन जाती है : किन्तु लड़के की आँखों से जब आँखें टकराती हैं तो वह खिलखिला पड़ती है। लड़के की खिलखिलाहट के साथ ध्वनि मिल जाती है।

अविनाश उसके परिवार से हिलमिल जाता है। अविनाश के चाचा डी. एस. पी. हैं। पिता डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे। मृत्यु तभी हुई जब अविनाश पाँच साल का था। माँ भी दो वर्ष बाद गुजरीं। अब वह अकेला है। चाचा के यहाँ पल रहा है।

आशा का सूनापन बहुत कुछ दूर हो गया है। यह अविनाश अच्छा साथी है। पेड़ पर बन्दर की तरह चढ़ सकता है। ऊँचे टीले से कूद सकता है। नदी आरपार कर सकता है। इम्तहान में अव्वल है। लड़ाकू परले दर्जे का है।

"मैंने भूत देखा है !" अविनाश अकड़ कर कहता है।

"भूत ?" आशा के स्वर में थर्राहट है।

"देखा ही नहीं उससे लड़ा भी है।

"भूत से लड़े हो ?" आशा की बड़ी-बड़ी आँखों में विस्मय का समुद्र है।

"हाँ हाँ भूत से...श्मशान में रात को बारह बजे गया हूँ।" आशा सिर से पैर तक काँप उठी है।

"कल रात मुझसे न रहा गया। भूत देखने निकल ही पड़ा। एक मुर्दा जल रहा था। जलाने वाले उसे अधजला छोड़कर ही चले गये थे। मैं वहीं खड़ा था भूत देखने के लिए। रात जब बहुत बीत गई तो लौटा आ रहा था। रास्ते में भूत से भेंट हुई...!"

"फिर...?" आशा ने अपना दबा हुआ उच्छ्वास फेंक कर पूछा।

"फिर क्या ? मेरे पास जादू की लकड़ी थी। एक साधु ने एक रुपये पर इसे दिया था। जब भूत मुझसे लिपट गया तो मैंने उसी लकड़ी से दे मारा.....फिर वह गायब हो गया !... सुबह मैं वहाँ फिर गया किन्तु एक बटन को छोड़ कर और कुछ नहीं मिला।"

"बटन...बटन कैसा ?"

"मेरी कोट का बटन...भूत ने तोड़ दिया था।"

आशा का नन्हा कलेजा धक्-धक् करने लगा।

.....और इसी तरह की कहानियाँ, रोमांचकारी घटनाओं को अविनाश के मुख से सुन कर आशा आत्म-विभोर हो जाती थी।

धीरे-धीरे एक साल गुजर गया.....स्वप्न की तरह ! अविनाश से आशा की मैत्री पूर्णरूप से गाढ़ी हो चली।

किन्तु एक दिन.....

एक दिन अविनाश आया। वह उदास था।

आशा ने कहा—"आज तुम हँसते नहीं ?"

"नहीं।" अविनाश का संक्षिप्त उत्तर था।

"क्यों ?"

"कल हम जा रहे हैं।"

"कहाँ ?"

"चाचा की तरक्की हुई है। शहर छोड़ना पड़ेगा।"

आशा का सारा उत्साह मंद पड़ गया। अविनाश के लिए उसने अंगरेजी फूलों की एक माला तैयार की थी। माला के बीच में देशी गुलाब का एक लाल फूल था।

कुछ देर तक चुप्पी।

"तो मैं जाऊँ ?"

आशा मौन थी।

बाहर लोहे की एक बेंच थी। उसी पर दोनों बैठे थे। आशा ने पत्तियों के बीच से माला निकाली। कुछ देर तक माला को ही वह देखती रही।

"यह गुलाब तो खूब लाल है.....!"

"हूँ....."

"आज आसमान में बादल छाये हैं।"

आशा ने गुलाब की एक पँखुड़ी तोड़ दी।

"आज मेरा मोर खूब नाचेगा.....।"

".....।"

"तो मैं जाऊँ ?"

आशा चुप थी।

इसी बीच आशा के पापा कार से उतरे। बेंच पर दोनों को गुमसुम बैठे देख बोले—"बात क्या है ?"

उत्तर किसीने नहीं दिया।

"तुमलोग जा रहे हो अविनाश.....?"

"जी...।" अविनाश उठ कर खड़ा हो गया।

"बैठो...बैठो। तुम्हारे चाचा से आज भेंट हुई थी। उनकी तरक्की हुई है ?" और इतने में आशा के चेहरे को देख चमक उठे—"यह क्या बेटी...रोती हो ?...यह सब तो होता ही रहता है। सरकारी नौकरी ठहरी।"

अविनाश की ओर देख वे बोले—"चलो अविनाश, कुछ खाकर लौटना।"

और जब अविनाश लौटने लगा तो आशा साथ बाहर आई। बोली—"मैंने यह माला तुम्हारे लिए बनाई थी।"

"मेरे लिए ?"

"हाँ।" स्वर गीला था।

अविनाश ने माला हाथ में ले ली।

"चिट्ठी लिखोगे ?"

अविनाश ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ...।"

फिर दोनों चुप हो गये।

"तो मैं जाऊँ ?"

"जाओ...।" कह कर दस साल की वह लड़की अपने को न रोक सकी। सुबक कर रो ही पड़ी।

और भूत से लड़नेवाले उस बहादुर अविनाश की आँखों से भी दो गरम बूँदें गुलाब की लाल पँखुड़ियों पर ढुलक ही पड़ती हैं।

[दो]

दस हेमन्त समय की परिधि में खो गये।

दिन को बीतना था, वे बीत गये। आशा अपने उस बिछुड़े हुए साथी की याद कर कभी-कभी अनमनी हो जाती। सोचती—कहाँ होगा वह अविनाश ?

बचपन पर किशोरावस्था ने आक्रमण किया। अनजाने, चुपके से सौन्दर्य्य का भार कोई आशारानी पर फेंक गया। एक दिन आरसी में अपना प्रतिविम्ब देख वह संकुचित हो उठी। कपोलों पर हल्की लाली आई: आँखों में एक नया रस आया : वाणी में कोमलता आई: जीवन की गति में स्फूर्ति आई।

आशारानी फिर भी अनमनी रही। इन्टर पास कर अब वह युनिवर्सिटी में पढ़ रही थी। पिता इलाहाबाद में आ गये थे।

एक रविवार की बात है। आशा दोपहर की आलस भरी वेला में एक कविता-पुस्तक पढ़ रही थी। कवि की अन्तिम कविता बड़ी करुण थी। अपनी प्रेयसी के निधन पर कवि ने अपने हृदय के उद्गार व्यक्त किए थे।

भाव था:—'ओ भविष्य के अतलगर्भ में समाजानेवाली मेरी निराशा, आज तुम मुझे क्यों रुला रही हो?...ओ पूनों के चाँद! तुम क्या उस पीड़ा की ताप को हरण कर सकोगे?'...

आशा पुस्तक बन्दकर कुछ सोच रही थी। इसी समय पापा की आवाज आई—"बेटी...?"

वह उठकर बैठ गई। बोली—"क्या है बाबू जो...?"

"एक खुशखबरी है बेटी..."

आशा ने प्रश्नभरी मुद्रा से पापा के चेहरे की ओर देखा।

"तुम्हें अविनाश की याद है?"

"अविनाश!" हृदय में कुछ स्पंदन हुआ।

"हाँ बेटी....वही अविनाश जो लड़कपन में तुम्हारा साथी था और जिसके चले जाने पर तुम दो शाम तक भूखी रही थी....।"

आशा का मुख लाल हो उठा।

पिता बोलते गये—"अभी-अभी, बाजार की सड़क पर उससे भेंट हुई। मैं तो पहचान ही न सका! उसीने प्रणाम कर अपना

परिचय दिया...मिलकर बड़ी खुशी हुई। अब वह काफी बड़ा और तन्दुरुस्त हो गया है। यहीं की युनिवर्सिटी से उसने इस साल एम. ए. किया है। मैं जल्दी में था, इसलिए अधिक बातें नहीं कर सका। आज शाम को चाय पीने उसे बुलाया है।"

उस दिन को क्या आशा भूल सकती है? संध्या की प्रतीक्षा में एक पल एक युग हो रहा था। हृदय में एक नई धड़कन आ गई थी।... आज अविनाश आयगा...उसके बचपन का साथी अविनाश!

संध्या के साथ ही वह फाटक के निकट आ खड़ी हुई। अपनी उत्कंठा--प्रबल आकुलता--वह न दबा सकी।

और कुछ मिनटों बाद आशा की आँखों ने देखा—खद्दर की साफ वेश-भूषा में सुसज्जित एक खिला तरुण उसके सामने है। आँखों में नम्रता है: मुख पर संकोच है।

"नमस्ते...।" दो जुड़े हाथ उठे।

आशा का मुख लाल हो उठा। वह प्रत्याभिवादन भी न कर सकी।

इसी समय आशा की माँ 'बेबे' के साथ आई। बोली—"आ गए भैय्या...आओ आओ...भीतर आओ।"

अविनाश ने झुक कर चरण छुए।

आशा की माँ बोली—'चिरंजीवि हो बेटा...कितने साल के बाद

आज तुझे देख रही हूँ ! इसी शहर में तू रहता है और एक दिन भी खोज लेने नहीं आया....मेरी आशा तो तेरी सदा याद करती है...।"

अविनाश ने देखा, आशा के कपोल अरुण हो उठे हैं।

चाय पीते हुए धीरे-धीरे अविनाश ने अपना सारा हाल कहा। चाचा से उसकी नहीं पटी। वे अविनाश के विचारों को आपत्ति-जनक मानते हैं। अविनाश का खद्दर पहनना उन्हें नहीं सुहाता... और एकदिन अविनाश को उन्होंने इस कारण फटकारा चूँकि वह हरिजन के लड़कों को रात्रि-पाठशाला में पढ़ाने जाता था !

अविनाश उसी रात वहाँ से इलाहाबाद आ गया। स्कालरशिप के रुपये से वह कालेज का खर्च चलाता रहा। एम० ए० कर अब वह एक दैनिक पत्र का सहायक-सम्पादक है।

अविनाश की बातों को अविचल भाव से आशा सुनती रही। इस तरह सुनती रही मानो किसी रोचक उपन्यास का अन्तिम परिच्छेद पढ़ रही हो !

आशा ने पाया...अविशाश वही है...वही अविनाश....वही स्वर....वही हृदय ! चेहरे पर कुछ गंभीरता अवश्य आ गई है किन्तु आशा की आँखें यह साफ देख रही हैं कि उसका अविनाश अब भी भूतों से लड़नेवाला प्राणी है !

और बातचीत के बीच जब आशा की बड़ी-बड़ी आँखों से अविनाश की आँखें टकरातीं तो दोनों के हृदय में कुछ सुलग आता।

लौटती बार आशा फाटक तक पहुँचाने आई।

रास्ते में अविनाश बोला—"आशा....?'

आशा ने मुख नीचाकर कहा—"जी...?"

"तुम्हें देखकर आज कितनी खुशी हुई आशा, यह मैं नहीं कह सकता...."

"मैं तुम्हें सदा याद करती थी!" वाक्य आप ही आप आशा के मुख से फूट पड़ा था। आशा लज्जित हो उठी थी।

"तुम्हारी दी हुई माला मेरे पास अबतक सुरक्षित है आशा....।"

"माला ?....वह अबतक है!" आशा का हृदय पुरानी याद से भर आया।

"हाँ, गुलाब की पँखुड़ियाँ सूख गई हैं; किन्तु फिर भी एक रेशमी रूमाल में उसे सँजोये हूँ...।"

आशा की कल्पना बहुत पीछे खो गई थी।

"तो मैं अब जा रहा हूँ आशा...प्रेस में ड्यूटी है।"

अविनाश डेग बढ़ा रहा था कि आशा ने पुकारा—"अविनाश....?"

अविनाश ने मुड़कर देखा—आशा के कपोल और भी रक्तिम हो उठे हैं।

दबी आवाज में आशा ने पूछा—"फिर कब आओगे?"

"जब कहो....।"

"कल आओ न...।"

"आऊँगा...।" कहकर अविनाश फाटक के बाहर हो गया। एकटक, सतृष्ण नयनों से आशा उसे देखती रही और जब उसकी आकृति धुँधली पड़ी तो उसे संज्ञा हुई कि चाँद आकाश में निकल आया है!

आज आशा का हृदय नाच उठना चाह रहा था। आज उसने अपनी कल्पना की साकार मूर्ति पा ली थी। इसी की सूक्ष्म छाया तो उसके अन्तःकरण के किसी कोने में छुपी बैठी थी। आज आशा ने पाया—वह हल्की है—बहुत ही हल्की! उसके हृदय के तारों को आज प्रथम बार किसी ने अपनी कोमल और कलात्मक अंगुलियों से स्पर्श किया है! यह पुलक, यह सिहरन, उसके मन-प्राण में एक ऐसी गूँज छोड़ गई है जिसकी प्रतिध्वनि अहर्निश, प्रतिपल, वह अनुभव कर रही है।

आज दोपहर में वह जिस कविता-पुस्तक को पढ़ रही थी, उसका पहला गीत आशा को याद आ गया। कवि ने अपनी प्रेयसी के प्रथम दर्शन पर उसे लिखा था। कवि की पंक्तियों में वह मानो मुखर हो उठी—"ओ चाँद, ओ विस्तृत हरीतिमा! ओ शून्य! तुमने देखा, आज मैंने क्या पाया है? अरे, मैंने जो अनमोल रत्न पाया है, उसकी साक्षी तो तुम रहोगे ही...रहोगे ही!"

[तीन]

और उनदिनों आशा की खुशी का अन्त न था। क्लास में बैठ वह अन्यमनस्क हो फाउन्टेनपेन से कागज कुरेदती। लेक्चर नोट करने में जी नहीं लगता।

'अविनाश...' उसने कापी के कोने में टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा।

बगल में शारदा बैठी थी। वह आशा की इस 'मूड' को देखकर उत्सुक हुई। मुस्कुराकर बोली—"यह क्या है? 'इकोनामिक्स' के क्लास में 'अविनाश' कौन 'सरप्लस भैलू' (surplus value) है?'

आशा लजा गई। उसने नाम काट दिया और फिर उसे रगड़ने लगी।

"क्यों री, आजकाल 'जूलियट' हो रही है ? यह तुम्हारा 'रोमिओ' है ?"

"धत्" उसे चिकोटी काटकर आशा बोली।

"मुझसे उड़ती हो ? बतलाओ तो जरा, यह कौन कर्म का साँढ़ है जिसने हमारी आशारानी पर...!"

"ऑडर...ऑडर !...कुछ आवाजें आ रही हैं।" लेक्चरार ने ताकीद की।

शारदा घिसक कर अपनी कापी पर झुकी।

और यह स्पंदन...यह नशा...यह बेहोशी !...आशा कभी कभी स्वयं लज्जित हो जाती और मूड बदलने की चेष्टा करती। किन्तु हाय, वह कहाँ सफल हो पाती ?

लड़कियों में बात छिपी न रही। उस दिन दो पिरियड लीजर थे। कामन रूम में अधिकांश लड़कियाँ इकट्ठी थीं। एक ने मुँह बनाकर नाटकीय ढँग से कहा—"तोरे बिन आवत नाहीं चैन !... ओ मेरे जीवन-धन ?....इस विरहिणी के ताप को तुम कब दूर करोगे ?...आकाश में बादल लहरा गये...पपीहे की कूक ने विरह की अग्नि सुलगा दी है....ओ मेरे हृदय की धड़कन ! तुम्हारे विरह में मैं आज 'टिटोरियल' का टास्क भी नहीं कर सकी...!"

सभी लड़कियों ने ठहाका लगाया।

एक ने कहा—"आहा ! बेचारी आशारानी कितनी घुल गई !"

दूसरी ने 'देवदास' की नकल की—"अब कुछ सूझत नाहीं!"

आशा ने झल्ला कर कहा—"तुमलोग क्यों मुझे तंग कर रही हो ? मैं क्या पगली हूँ...?"

"नहीं...नहीं....दीवानी !...." बगल की मिस इन्दु ने मीरा का पद दुहराया—'हैं री ! मैं तो प्रेम दीवानी भई....मेरो दरद न जाने कोय...।"

पुनः एक अट्टहास कामन-रूम में गूँज गया।

कुछ देर तक चुप्पी रही। इसके बाद मिस रेखा ने आँखों में शरारत भरकर पूछा—"आखिर ये मिस्टर अविनाश हैं कौन...?"

"तुम्हारे दूल्हारे...!" खीझकर आशा उठ खड़ी हुई। एक बार सभी ने फिर ठहाका लगाया।

शारदा ने पुकारकर कहा—"जा कहाँ रही हो ?...इसके बाद भंडारकर का क्लास है।"

"जहन्नुम में।" आशा का चेहरा खीझ से लाल हो उठा।

"सो तो देख ही रही हूँ।" मिस रेखा ने छूटते ही कहा। एक बार फिर चंचल हँसी कमरे में थर्रा उठी।

घर पहुँच कर उसने अविनाश का फोटो निकाला। फोटो छोटा होने पर भी आकर्षक था।

फोटो को सामने रखकर बोली—"तुम्हारे कारण आज मैं कितनी बनाई गई, यह तुम्हें क्या मालूम...? अविनाश, तुम मेरी व्यथा को क्या समझ सकोगे ?..."

× × ×

अविनाश को प्रायः छुट्टी कम रहती है। नाइट-ड्यूटी से थकी

और क्लान्त आँखें काफी विश्राम खोजती हैं। मजदूर-आन्दोलन को प्रगतिशील बनाने में भी वह हिस्सा लेता है।

किन्तु जब उसे थोड़ा भी समय मिलता है, आशा की भोली आँखें उसे खींच लेती हैं। बातें करना अविनाश खूब जानता है। लड़कपन की वह आदत आज भी नहीं छूटी है।

'बेब' अब बड़ा हो गया है। कहानियाँ उसे अच्छी लगती हैं और यह अविनाश है जो कहानियाँ खूब जानता है।

"अच्छा अनिल, (यह 'बेब' का संशोधित नाम है)....तुम जादू जानते हो ?"

"जादू....नहीं ...।" अनिल सिर हिला देता है।

"मैं जानताहूँ। लड़कपन में मैं भूत से लड़ चुका हूँ !"

"झूठी बात है।" अनिल अपनी विज्ञता दिखलाना चाहता है।

"अच्छा, पूछ देखो अपनी दीदी से...मैं जादू जानता हूँ या नहीं ?....तुम्हारी दीदी तो झूठ नहीं बोलतीं।"

अनिल पूछता है—"हाँ दीदी, अविनाश बाबू जादू जानते हैं ?"

"जानते ही हैं.....।" कह आशा मुस्कुरा पड़ती है। अविनाश के अधर भी विहँस उठते हैं।

आशा एकान्त में सोचती है, सच ही तो ! यह अविनाश कितना बड़ा जादूगर है !...मेरे मन-प्राण को उसने किस तरह आच्छादित कर रक्खा है !

और वह पूनों की रात।

उसदिन पूजा का आयोजन था। अविनाश निमंत्रित था।

चाँद की शुभ्र ज्योत्स्ना उस उजले बँगले पर मूर्च्छित-सी पड़ी थी। रजनीगन्धा की सुगन्ध शीतल वायु में व्याप्त थी।

अविनाश और आशा उन क्यारियों के किनारों पर टहल रहे थे। पण्डितजी के आने में अभी देर थी। भीतर पापा और माँ पूजा के आयोजन में बझे थे।

अविनाश ने कहा—"आशा...?"

आशा ने प्रश्नभरी मुद्रा उठाई।

"यह चाँद आज कितना सुन्दर लग रहा है...!"

"आज ही भर तो!" आशा ने चाँद की ओर देखकर कहा।

"सो क्यों?"

"कल से इसकी कला ढलने लगेगी।"

अविनाश उत्तर सुनकर चुप हो गया। कुछ देर तक आशा के चेहरे की ओर देखता रहा, फिर बोला—"आशा...?" स्वर में कुछ थर्राहट थी। आशा मौन रही।

"हम क्या इसी तरह चल सकेंगे?"

आशा ने इसबार भी जवाब नहीं दिया।

"क्या फिर हम एकदिन बिछुड़ तो न जायँगे...?"

आशा की सूनी आँखें उठीं।

"आशा...तुम्हें इतना निकट पाकर आज कुछ कहने की बड़ी इच्छा हो रही है।"

"तो मैं तुमसे अलग ही कब थी ?" आशा का स्वर दृढ़ था।

अविनाश एकटक उसे देखता रह गया।

आशा संयत स्वर में बोली—"तुम मेरी हरेक साँस में हो अविनाश...बचपन में, एकदिन अनजाने, जिसके लिए मैंने बड़े यत्न से माला तैयार की थी, उसी माला में मैंने अपने आपको भी अर्पण कर दिया है...।"

अविनाश की आँखें स्थिर हो गई थीं।

[चार]

और आशारानी ने भी सुना—ब्याह होना चाहिए।

माँ पापा से कह रही थी—"आशा काफी बड़ी हो चुकी। अब उसका ब्याह होना चाहिए।"

पिता अखबार से दृष्टि हटाकर चश्मा पोंछते बोले—"ब्याह ?"

"हाँ, ब्याह। हिन्दू घर की लड़कियाँ अधिक दिन तक कुँवारी नहीं रह सकतीं। आप भले ही साहब हो जाँय किन्तु रहना तो हिन्दू समाज में ही है!....मेरा ब्याह तेरह साल की उम्र में हुआ था।"

"हाँ, हमें यह याद है। हम उस समय इन्टर में पढ़ते थे।" कह कर पिता हँस पड़े।

"हँसने की बात नहीं है। आशा काफी पढ़ चुकी है। आप सक्सेना की लड़की का परिणाम देख ही चुके हैं। वह एम. ए. पास है। तीस वर्ष की होने पर भी अबतक कुँवारी है। कॉलेज में पढ़कर शोहरत लूट रही है। माँ-बाप से अलग रहकर यह लड़की आज कैसी इज्जत पा रही है, यह कौन नहीं जानता ?...आज उससे कौन ब्याह करने पर तैयार होगा ?"

पिता आँखें मलकर कुछ सोचते रहे।

"तो अब बैठने से काम न चलेगा...।"

बात यहीं खतम हो गई। प्रायः दो सप्ताह बाद वे माँ से कह रहे थे—"लड़का पढ़ा लिखा और काफी संपन्न है। देखने में भी अच्छा है...कानपुर में वह एक मिल का प्रोप्राइटर है। हजारों की जमींदारी है। बैंक में काफी रुपया जमा है...।"

"तो वे राजी हो जाँयगे ?" माँ विह्वल हो पूछ उठी।

"उमीद तो ऐसी ही है। हमारे कॉलेज के एक साथी का वह रिश्तेमंद है। आजकल ये यहीं एक अच्छी सरकारी नौकरी पर हैं। कल बातें करते हुए जिक्र चल पड़ी।..."

कुछ देर तक सोचने के बाद माँ ने एक दीर्घ सांस लेकर कहा—"आदमी की इच्छा कभी पूरी नहीं होती। यही देखो न, यह अविनाश हमारी आशा के लिए कितना अच्छा वर हो सकता था ! ...किन्तु ईश्वर की माया...!"

पिता चुप रहे।

माँ कहती गई—"हमारी जाति का भी तो अविनाश नहीं है... बला से पैसे नहीं हैं, मैं तो इसे ही...।"

पिता ने रोककर कहा—"हमारे मन में भी ऐसा विचार आया था...पर भाग्य की बात !"

माँ ने अन्यमनस्क होकर कहा—"छोड़िये इन बातों को। जो होनेवाला नहीं है उसके लिए व्यर्थ में माथापच्ची करने से क्या फायदा...?"

और एक दिन बात फैल गई कि आशा का ब्याह होने जा रहा है। वर काफी संपन्न और कुलीन हैं।

आशा सोचती रह गई। उपन्यास पढ़ने में जी नहीं लगता। मन उड़ जाता। उड़ जाता—दूर, न जाने किस स्वप्निल प्रदेश में !

...इधर अविनाश क्यों नहीं आया ? हाय, अब उसके ब्याह को सिर्फ छः दिन रह गये हैं। वह कहाँ है ? कहाँ है ?...

दफ्तर के ऊपरी भाग के छोटे से कमरे में अविनाश रहता था। पता लगाने पर मालूम हुआ, वह दिल्ली के पत्र-कांफ्रेस में प्रेस-प्रतिनिधि होकर गया है।

आशा खबर सुनकर सन्न रह गई। आँखों में आँसू आ गये। ...ओ रे निर्दय, आज इस तूफान में तुम कहाँ हो ?....

किवाड़ बन्द कर वह रोई—खूब रोई। दिल थक आया।

महरी ने पुकारा—"रानी बिटिया, खाने चलो।"

"नहीं खाऊँगी।" आशा भीतर से ही भर्राए स्वर में बोली।

"जी अच्छा नहीं है...?"

"नहीं...नहीं...जाओ....मुझे दिक मत करो।"

खबर सुनकर पिता नीचे के कमरे से आये। माँ भी आई।

पिता बोले—"तबीअत खराब है बेटी ?...अरे, तुम्हारी आँखें कितनी लाल हो गई हैं...देह भी गर्म है! डाक्टर बुलाऊँ ?"

"नहीं बाबूजी, सुबह तक अच्छी हो जाऊँगी...।" स्वर को स्वाभाविक बनाने का प्रयास कर वह बोली।

रात आशा न सो सकी। मस्तिष्क में न जाने कितनीबातें आईं।

और समय पंख फैलाकर उड़ता है। वह उड़ा और चार दिन की दूरी को पार कर गया।

कल आशा का ब्याह है।

घर मेहमानों से भर गया है। बाजे बज रहे हैं। लोगों की खुशी का अन्त नहीं है। हलवाइयों की पंक्ति अलग है : दर्जियों को दम मारने की फुर्सत नहीं है। बँगला खूब सजाया गया है।

और यह शहनाई है जो बज रही है। इस तरह बज रही है मानो किसी विरह में पली हो!

आशा अपने कमरे में पड़ी है। अन्धकार की छाती को चीरता बिजली का प्रकाश चहुँओर फैल गया है।....किन्तु हाय, उसके हृदय में यह कैसा घोर तिमिर है...कैसी यह मीठी पीर है ?...

अविनाश का कुछ पता नहीं। नौकर लौट आया है। साथ में

प्रधान संपादक का एक चिट है—"अविनाश बाबू कांफ्रेन्स के बाद उधर से ही कहीं दूसरी जगह चले गये हैं। प्रेस से पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर। कहाँ-कहाँ जायँगे, यह नहीं लिखा है।"

उस चिट को पढ़कर आशा चाहती है कि वह रोये...सिर धुन-धुन कर रोये....अरे हो निष्ठुर... तुम एकबार आ जाते....एकबार ही सही! तुम्हें भर नेत्रों से देख तो लेती!

विचारों की तरंगें उठ रही हैं। एकबार जी में आता है—क्यों न वह इस शादी को ठुकरा दे?...साफ कह दे—"यह शादी नहीं, मेरी मौत है!"

विचार जोर पकड़ता है। दिल से उठकर दिमाग में उधेड़बुन करता है....वह आज की नारी है—बीसवीं सदी की नारी। वह रूढ़ियों को पैरों से मसलकर चकनाचूर कर सकती है। उसके हाथों में इतना बल है कि कच्चे धागे की तरह समाज के इस बन्धन को तोड़ सकती है। वह कोई गुड़िया नहीं है: बल्कि रक्त और मांस की बनी हुई एक सजीव शक्ति है जिसका अपना अस्तित्व है—अपना मस्तिष्क है।

किन्तु साथ ही शहनाई की यह आवाज भी तो उसके हृदय के अन्तिम स्वर को छू रही है। यह नग्न सत्य, यह सारा आयोजन! सारा नगर तो इस बात को जान रहा है कि कल आशा का ब्याह है! हाय, वह कैसे अपने पिता की इतनी बड़ी प्रतिष्ठा पर कूची फेर दे?...

आशा का सारा जोश, सारी भावुकता पानी के बुलबुले की तरह समाप्त हो जाती है।

दिन चढ़ आया है। रात भर आशा जाग कर रात्रि के अन्तिम प्रहर में सो पाई है। इस नींद में भी वह एक भयावना स्वप्न देखती है। देखती है—वह दूर कहीं ऐसे घने और निर्जन बन प्रान्त में है जहाँ मनुष्य नाम की वस्तु नहीं। वह पथ भूल गई है; संगी बिछुड़ गये हैं।...रात का घना अन्धकार बढ़ आया है।...और यह क्या?...यह किसके सम्मुख है?...यह तो काल की तरह भयानक है। इसके जबड़े कितने खूँखार हैं!

"ओ माँ!" कहकर आशा चीख उठती है। उसकी नींद टूट गई है। आँखें मलकर वह भौंचक सी रह जाती है। सिर झनझना उठा है।

"रानी बिटिया...दरवाजा खोलो...।"

दरवाजा खोलकर वह आँखें मलने लगती है।

"माँ बुला रही है रानी बिटिया...आज तुम्हारा ब्याह है और तुम अबतक...?"

"ब्याह! आज मेरा ब्याह है?" आशा महरी के चेहरे को इस तरह देखने लगती है मानो वह बात कुछ भी नहीं समझ पा रही है।

और अब आशा का ब्याह हो रहा है। मंडप में मंत्रों का पवित्र उच्चार हो रहा है। आशा का स्वामी, उसका पति, जो कुछ ही घन्टे पहले गैर था, आज आशा का सब कुछ बन बैठा है! सब कुछ।

एक हिन्दू लड़की के लिए यही तो चरम सीमा है। अब आशा कुँवारी नहीं रह गई है। 'बधू' का उत्तरदायित्व अभी-अभी ही उसके कन्धों पर चढ़ा है। सिन्दूर की यह रेखा मानो रक्त की एक लकीर है जो बज्र की नाईं प्रखर है। यह सुहाग का प्रवेश द्वार है।

रेशमी घूँघट को आड़ से सूनी-सूनी आँखें उठा आशा देखती है—अपने भाग्य को! यह पुरुष जो गंभीर बनकर सामने बैठा है, उसका 'सब कुछ' है। मुख सुन्दर है और उस पर एक गंभीरता है—ऐसी गंभीरता जिसमें 'अहं' की भावना झलक उठती है।

आशा का मन न जाने क्यों मसोस उठा। न जाने क्यों उसे लगा, उसके भविष्य पर कुछ काले बादल उमड़ते आ रहे हैं।

और शहनाई बज रही है...बजती ही जा रही है!

माँ फूट-फूट कर रोई। अपनी लाड़ली को आज पराया करते उसका मातृत्व चिल्ला-चिल्लाकर रोया। सदा स्नेह के पलने में पलनेवाली यह लड़की आज संसार के कठोर बन्धन में फँसने जा रही है, यह सोच कर आशा की माँ का हृदय बिलख उठा।

और झुककर पिता के चरण छूने जब आशा बढ़ी तो उस सब-जज का हृदय आज पिता का हृदय बन बैठा। रूमाल से अपने आँसू पोंछ आशा के सिर पर हाथ फेरते वे बोले—"बिटिया, भगवान् तुम्हारा मंगल करें...।"

सेकेंड क्लास का रिजर्व डिब्बा। उसमें सिर्फ नवदम्पति ही हैं—आशा और बलवन्त। बलवन्त आशा के सामने ही बैठा है।

आशा मौन है। घूँघट बहुत थोड़ा है। आँखें सूनी-सूनी हैं। कोने में कुछ लाली जरूर है।

बलवन्त एक सिगरेट सुलगा कर धीरे-धीरे कश खींचता है। सिगरेट का धुँआ चक्कर मारता हुआ उठता है किन्तु गाड़ी की गति में पीछे छूट जाता है।

एक्सप्रेस अपनी पूरी गति में है।

[पाँच]

उसी दिन—जिसदिन आशा दूसरे की हो रही थी, उर्म्मिला की माँग पर भी सिन्दूर चढ़ रहा था। आँखों की कोर से उसने अपने स्वप्न को देखा—उसका मन खुशी से भर गया। कितने सुन्दर हैं ये!

पालकी पर उर्म्मिला के साथ भोर होते-होते रामरूप अपने गाँव पहुँच गया।

गाँव छोटा है, फिर भी प्रसिद्धि में कम नहीं। लखनपुर को आसपास के सभी जवार जानते हैं। बिकटू ओझा इसी गाँव के हैं जिनके भूत उतारने की विद्या सारे जिले में प्रख्यात है। नकछेदी साव से किसका वास्ता नहीं है? आसपास के सभी गाँव के लोग

जरूरत पड़ने पर इन्हीं की शरण में आते हैं। बला से ये रुपये आना सूद लेते हैं—वक्तपर देने से इन्कार तो नहीं करते? बहादुरी में भी क्या यह गाँव पीछे है? कलक्टर साहब ने खुद एकबार अपने मुँह से कहा था—"पिछली जरमन की लड़ाई में लखनपुर ने घर पीछे एक आदमी दिया था। यह बहादुरी सारे जिले में सिर्फ लखनपुर ने दिखलाई।

बटोही मुकुल ने काशी जाकर विद्या पढ़ी है। कथा-पुराण बाँचने में तो सात गाँव के पंडित भी मुकाबिला नहीं कर सकते। मुकुलजी का यश चारों ओर छाया है। वे गाँव के मुखिया भी हैं। दिवानी हो, फौजदारी हो : कौन वकील अंग्रेजी में फर्राटे से बोलकर हाकिम पर रोब जमाता है, कौन मुहूर्त अच्छा है, ये सभी बातें जानने के लिए बाहर के लोग आते हैं।

मुकुलजी को पुरोहिती के सिवा सौ बीघे खेत भी हैं।

रामरूप इन्हीं का छोटा भाई है। दसवें क्लास तक उसने अंग्रेजी भी पढ़ी है। अब गृहस्थी के काम में भाई का हाथ बँटाता है।

उर्मिला को देखकर सारा गाँव चकित है। सोलह साल की यह लड़की मानो कोई अप्सरा की तरह दीखती है। उसके मुख का भोलापन, उसके गालों की हल्की लाली, उसकी आँखों की तीक्ष्णता गाँव की औरतों में चर्चा के विषय हो गये हैं।

कुएँ पर पानी भरती हुई जग्गू की माँ पूछती है—"हाँ री लछमिन, तूने रामरूप की बहू को देखा है.....?"

"देखा क्यों नहीं है ?"

"एक बात जानती है ?"

"क्या ?" सभी के हाथ की डोर जहाँ की तहाँ रह जाती है। बात जानने को सभी कान फैला लेती हैं।

"अरे, यशोदा काकी कहती थी कि बहू कुलच्छनी है !"

"कुलच्छनी ?" सभी एक दूसरे को देखने लगती हैं। कहानी क्लाइमेक्स पर है।

"हाँ, यशोदा काकी कहती थी कि जिसकी आँखें इस तरह नीली रहती हैं और दाहिने गाल पर तिल, वह..... !"

"वह क्या ?" लछमिन पूछती है।

"वह अपने आदमी को ही खा जाती है.....!"

सभी स्तंभित हो गईं।

जग्गू की माँ ने रस्सी समेटते हुए कहा—"खैर, भगवान की माया'''यों वह है तो बड़ी लुभानी ''।"

मुकुलजी की धर्मपत्नी लजवन्ती देवी के लिए तो उर्मिला का रूप एक काँटा हो गया। लजवन्ती देवी स्वयं माँ काली की सफल आवृत्ति थीं। काला-कलूटा चेहरा...छोटी-छोटी विचित्र आँखें। सुहाग सिन्दूर की अति बाहुलता उन्हें एक दर्शनीय वस्तु बना डालती थीं। उन्हें चार सन्ताने हुईं किन्तु कोई भी माँ की ममता में न बँध सकी।

उर्मिला ने कुछ ही दिनों में पाया, यह दुनिया कठोर भी है !

सास नहीं थीं : इस कारण उसने लजवन्ती देवी के चरण छूकर कहा—"दीदी, तुम्हारा ही आसरा है।"

किन्तु लजवन्ती देवी को उसका फूटता हुआ यौवन उपहास करता लगा। सारे गाँव में उसके रूप की चर्चा सुन वह मन ही मन जल उठी।

और यह रामरूप था जो कभी उर्म्मिला से अलग होता ही नहीं! रात दिन उसके पीछे मंडराया करता है! जो रामरूप घर से सिर्फ खाने का वास्ता रखता था, आज वह घर की देहरी से कदम बढ़ाता ही नहीं!

उसदिन रामरूप शहर से लौटा तो एक मखमली छोटा बक्स लेता आया। चौखट पर ही लजवन्ती से उसकी मुठभेड़ हो गई। उसने आँखें नचाकर पूछा—"कहो बाबू, यह हाथ में क्या है?"

"यह?" रामरूप सकुचाता हुआ बोला—"यह एक बक्सा है भौजी...।"

"यह तो मैं भी देख रही हूँ; किन्तु इसमें है क्या?"

रामरूप आगे न बढ़ सका। ज्यों का त्यों खड़ा रह गया। लजवन्ती ने आगे बढ़कर बक्सा अपने हाथ में ले लिया और खोलकर देखा तो उसकी दो छोटी आँखें ईर्षा से जल उठीं। अपने भाव को दबा कर बोली—"यह सब क्या है बाबू?"

"इसे...इसे 'ब्यूटी बक्स' कहते हैं। इसमें साबुन तेल...।"

"सो तो देख ही रही हूँ।" कहकर वह झट से बक्सा थमा

चलने को हुई। चलते समय बोली—"बहू को सिर चढ़ाना ठीक नहीं है बाबू...पीछे पछताओगे...।"

लजवन्ती देवी के लिए यह कठिन परीक्षा थी। सुकुलजी ने क्या कभी उसे इस तरह की चीजें दी हैं? कभी तो वह प्यार से उसके हाथ पर कोई चीज न रख सके। न कह सके—'यह तुम्हारे लिए लाया हूँ।' कभी-कभी जब वह स्वयं बक-झक करती तो वे कहते—"साबुन में चर्बी रहती है...राम राम! यह क्या छूने की चीज है?" लजवन्ती देवी को चुप रह जाना होता। प्रचुर सिन्दूर और बदबूदार गड़ी के तेल से ही अपने विकृत सौन्दर्य को वह आकर्षक बनाने का असफल प्रयत्न करती।

उस दिन पारा काफी चढ़ा हुआ था। सुकुलजी रामनामा चादर ओढ़े माला जप रहे थे। लजवन्ती देवी जाकर वहीं बैठ गई। व्यंग्य में बोली—"अपने भाई की नेकनामी सुनते हो?"

"क्या?" माला फेरना बन्द हो गया।

शादी सब की होती है। तुम्हारी भी हुई थी।...पर क्या निर्लज्ज की तरह तुम भी रातदिन घर में छिपे रहते थे?"

भूमिका को छाया पहचान कर सुकुलजी ने सिर खुजलाकर कहा—"आखिर बात क्या है?"

"बात क्या होगी?...सारा गाँव तो जानता है और तुम्हें ही नहीं मालूम?...बड़े भोले बने बैठे हो!"

सुकुलजी माथा खुजलाते रहे। शायद माथे से कुछ निकालना चाहते थे!

लजवन्ती देवी ने मुँह ऐंठकर कहा—"यह बहू क्या आई है मेरा खाना-पीना दुस्वार हो गया है! न कुछ काम...न धन्धा...। रातदिन तुम्हारे अनमोल भाई को लेकर कोठरी बन्द किए रहती है!...हा-हा ही-ही को छोड़कर और कुछ काम ही नहीं है! मैंने तो सोचा था—बहू घर में आई : अब थोड़ी साँस लूँगी...किन्तु मेरा जला कपाल!" कह 'फट्' से लजवन्ती देवी ने कपाल ठोंक लिया।

सुकुलजी ने सांत्वना देने के स्वर में कहा—"अभी नई उमर है। रास्ते पर रामरूप कुछ दिन बाद आ ही जायगा।"

"आयगा क्या खाक?" नाक के मोटे नथुने फैलाकर लजवन्ती देवी बोलीं—"वह तो बैठे-बैठे घर का रुपया बर्बाद कर रहा है! शहर से आज एक मखमली बक्सा खरीद कर लाया है! बापरे! मैं तो देख कर दंग रह गई। आँखें चौंधिया गईं...कैसे-कैसे साबुन...
...इत्तर...ओठ रंगने का मसाला!...वह क्या पचास रुपये से कम का होगा?...."

"पचास रुपया?" सुकुलजी की आँखें फैल गईं।

"इस तरह घर कै दिन चलेगा?"

सुकुलजी कुछ सोचने लगे। फिर बोले—"अच्छा, मैं रामरूप को कल ही धामपुर के खेत की कटाई पर भेज दूँगा।"

और दूसरी सुबह जब रामरूप उठकर बाहर जा रहा था सुकुलजी ने पुकारा —"रामरूप...।"

रामरूप ने निकट आकर कहा—"जी...।"

"आज तुम्हें धामपुर जाना होगा...खेत को कटाई शुरू गई है।"

रामरूप इसके लिए प्रस्तुत न था। सकुचाकर पूछा- "आज ही...?"

"हाँ।" कहकर सुकुलजी ने 'गरुड़पुराण' खोला।

रामरूप अपने बड़े भाई की आज्ञा कभी नहीं टाल सका इसलिए वह और कुछ बोलने का साहस नहीं कर सका।

उर्मिला से विदा लेते समय उसका मन जाने कैसा-कैसा उठा। उर्मिला ने उसके कंधे पर सिर रखकर, भरी आँखों से पूछा- "कब लौटोगे?" उर्मिला के सिर पर हाथ फेरते रामरूप बोला- "कम-से-कम पन्द्रह दिन तो लग ही जायँगे...।"

"मेरा मन जरा भी नहीं लगेगा। दीदी तो भर मुँह बोल भी नहीं ...।"

रामरूप ने स्नेह के शब्दों में कहा—"पन्द्रह दिन कटते देर लगेगें...।" और रामरूप चला गया।

रामरूप गया किन्तु उर्मिला के हृदय पर न जाने एक कै आशंका की छाप छोड़ गया।

उर्मिला का जी नहीं लगता। दाल जल जाती और वह तलह पर सिर रक्खे चिन्ताओं में बभी रहती। दूध उफनाकर गिर पड़

और उसकी गन्ध पा लज्जवन्ती देवी दौड़ी आती। कहती—"यह कौन लक्षण है बहू ?...दैया रे, वियोग मैंने भी देखे हैं : किन्तु इस तरह तो मैं कभी बावरी नहीं हुई। दूल्हे के वियोग में भूलकर कभी मैंने दाल की जगह भात में नमक नहीं डाला है...!"

उर्म्मिला की चेतना लौट आती। विनीत स्वर में कहती—"माफ करो जीजी...अब ऐसी गलती नहीं होगी।"

किसी होने वाली दुर्घटना का आभास मन में पहले ही हो जाता है। उस रात उर्म्मिला ने एक बड़ा बुरा सपना देखा। सपना भयंकर था और वह भी सुबह का सपना! उर्म्मिला का मन बेचैन था। और इतने में कुछ कोलाहल हुआ—कुछ शोर मची।

उर्म्मिला ने झाँक कर देखा—एक इक्का उसके घर के बहुत समीप आ गया है और साथ में एक बड़ी भीड़ भी है। एक आदमी दौड़ता और हाँफता हुआ पुकार उठा—"सुकुलजी...ओ सुकुलजी!"

सुकुलजी घबड़ा कर बाहर आये। पूछा—"क्या है गोबरधन ?"

गोबरधन सुकुलजी के धामपुर वाले खेत का रखवारा था। उसका असमय आगमन और एक ऐसी भीड़ ने सुकुलजी को सन्न बना दिया।

गोबरधन ने सूखे गले से कहा—"पंडितजी, रामरूप भैय्या को साँप ने काटा है...!"

"साँप ने काटा है ?"....सुकुलजी की बोलती बंद हो गई। और उधर उर्म्मिला चक्कर खाकर गिर पड़ी।

गोबरधन ने रुँधे गले से कहा—"मालिक, कल साँझ को रामरूप भैय्या नदी किनारे टहलने गये थे। वहीं बांस के बगीचे में किसी सरप पर उनका पैर पड़ गया....!"

मुकुलजी बदहवाश हो इक्के के पास आये। जाकर देखा—उनके अनुज का सदा हँसने वाला चेहरा आज विषण्ण है। लाल ओठ काले पड़ गये हैं!

विष काफी चढ़ चुका था। गोबरधन ने अपनी सारी हिमाकत लगा दी थी। ओझा, गाँव के वैद, और हास्पिटल के एल. एम. पी. पास डाक्टर भी जब थक गये तब वह रामरूप को यहाँ ले आया है। विकट ओझा का अब आसरा है। विकट ओझा भीड़ हटाकर हाथ में नीम की टहनी हिलाकर मंत्र पढ़ रहे हैं। किन्तु फल आशाप्रद नहीं दीखता। रामरूप की बंद आँखें और बुझी सांस पर प्रख्यात विकट ओझा के मंत्र टकरा ही कर वापिस आते हैं।

सुबह से दोपहर....और दोपहर से शाम। अन्त में विकट ओझा कहते हैं—"बहुत देर के बाद हमें बुलाया गया। अब शरीर में जीव नहीं है.... !"

और उधर, टोले की स्त्रियाँ उर्म्मिला को पानी और पंखे से होश में लाने की चेष्टा कर रही थीं।

[छः]

एक्सप्रेस अपनी पूरी गति में है।

बलवन्त सिगरेट का कश खींचता है और छोड़ देता है। आशा सामने के अंधकार को देख रही है। डिब्बे में बिजली का प्रकाश है, किन्तु खिड़की के बाहर के अंधकार को ही आशा आज प्रधानता दे बैठी है।

बलवन्त कहता है—"रानी, यहाँ आओ।" स्वर में अपनापन है : माधुर्य्य है। आशा पास चली आती है।

बलवन्त उसका हाथ पकड़कर कहता है—"तुम मुझसे नाराज हो ?"

"नाराज...नहीं तो।" आशा दबे स्वर में कहती है।

"आज मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ.....मैंने सपने में भी न सोचा था कि अपने जीवन में मैं तुम जैसी संगिनी पा सकूँगा !"

आशा मौन है। मौन रहना ही तो वह जानती है !

बलवन्त कह रहा है—"रानी, मैं अभाव में पला हूँ। माँ मुझे तभी छोड़ गई जब मैं शिशु था। पिता पुरुष थे—कर्मठ पुरुष। उन्होंने मुझे स्नेह न देकर अपना पौरुष ही दिया। व्यवसाय... जमींदारी और दुनिया के ऐसे ही ठोस कामों में उन्होंने मुझे खड़ा होना सिखलाया। किन्तु स्नेह और ममता नाम की वस्तु मैं सचमुच नहीं पा सका। रुपये के बल पर स्नेह और ममता के नाम पर मैंने 'आया' की थपकियाँ पाई हैं, नौकरों के कन्धे पर सवार हुआ हूँ। पर रानी....।"

आशा ने देखा, उसके पति के नेत्र सजल हैं।

बलवन्त बोला—"रानी, आज माँ की बड़ी याद आ रही है। मेरी वह जननी अन्नपूर्णा थीं, ऐसा मैंने सुना है। आज वह तुम्हें पाकर कितनी खुश होतीं !"

आशा को लगा, वह भी रो पड़ेगी। पति की कातरता में वह घुल गई। हाय, वह किस देवता के हाथों पड़ी है ?....

"जानती हो रानी, 'औरत' नाम की वस्तु से मुझे शुरू से सख्त चिढ़ थी। मुझे बतलाया गया था, यह उठते आदमी को घसीट लेती है।...व्यापारिक-मस्तिष्क में 'औरत' एक कोड़ा है जो उसे सदा असहाय और कमजोर बनाए रखता है। अपने कॉलेज

की जिन्दगी में मैं इसी नीति पर बढ़ा। इस पचीस वर्ष के जीवन में पहले-पहल तुम्हें ही मैंने चकित होकर देखा है।...'विवाह' का प्रश्न मुझसे टकराता रहा; किन्तु हरबार मैंने उपेक्षा के साथ उसे ठेल दिया। पर, जिसदिन तुम्हारा फोटो मेरे हाथ में आया—मेरा सारा संस्कार—एक युग की जमी हुई धारणा की भित्ति हिल उठी। मैंने तुम्हारे चेहरे पर एक ऐसा आश्चर्य्यजनक भाव पाया जिसने मेरे हृदय की सारी ग्रन्थियों को झकझोर डाला।"....

आशा सिर झुकाए सब सुन रही है।

"रानी, तुम्हें देखकर लगता है जैसे बचपन में पढ़ी हुई किसी देवकन्या की छाया मेरे सम्मुख है...और....अरे, यह क्या?... तुम रो क्यों रही हो?"

आशा ने अपने पति के चरण छूकर कहा—"देखिए, मैं बहुत छोटी हूँ। आप मुझे इस तरह...।"

बलवन्त चुप हो गया। आहिस्ते सिगरेट सुलगाई।

और दूसरी सुबह आशा अपने पतिगृह पहुँच गई।

यह बड़ी आलीशान इमारत अपने ही रूप पर मानो मुग्ध है। बलवन्त ने कहा—"रानी, अब यह सब कुछ संभालना तुम्हारा काम है।"

और यह बलवन्त है जो आशा से एक पल भी बिछुड़ना नहीं चाहता। 'प्रेजेन्ट्स' से कमरा भर गया है। फर्नीचरों के ऑर्डर पर ऑर्डर दिए जा रहे हैं। जौहरी को रोज एक नया ऑर्डर मिलता है।

'फैन्सी स्टोर' की सभी बेशकीमती साड़ियाँ खरीद ली गई हैं। ट्वायलेट तो इतने हैं कि कमरा सुगन्धित हो उठा है!

आशा पूछती है—"यह सब क्यों....?"

बलवन्त मुस्कुराकर कहता है—"रानो, यदि मैं आकाश से चाँद उतार पाता तो उसे भी भेंट करता...यदि सुबह की लाली बटोर सकता तो...।"

"आप तो कविता कर रहे हैं!" किंचित मुस्कुराकर आशा बोली।

"एक तुकबन्दी भी इस दीर्घ जीवन में कभी नहीं कर पाया हूँ रानी...किन्तु तुम्हें पाकर आज यदि मैं 'कीटस' और 'शैली' नहीं बन पाता तो यह मेरा दुर्भाग्य है...।"

आशा चुप रही। उसका चेहरा न जाने क्या सोचकर उतर आया। हाय, वह इस देवता को किस हृदय में स्थान दे?....

बलवन्त ने किताबों का पैकेट खोलते हुए कहा—"ये किताबें तुम्हारे मनोरंजन के लिए हैं। रवीन्द्र, शरत्, प्रेमचन्द और प्रसाद के सेट हैं। हिन्दी के उपन्यास मैं कम पढ़ पाया हूँ। अंगरेजी के हक्सले और लारेन्स को मैंने दिलचस्पी से पढ़ा है। शरत् को कुछ किताबें मैंने कॉलेज-जीवन में पढ़ी थीं।....वे भावुकता के अतल स्तर में चले जाते हैं, इस कारण कभी-कभी मुझे उनसे चिढ़-सी होती है। यह 'चरित्रहीन' है। इसकी 'किरणमयी' एक विचित्र औरत है। मुझे यह उपन्यास पसन्द आया था। तुमने इसे पढ़ा है?"

आशा पुस्तक पढ़ चुकी थी: फिर भी पति का उत्साह भंग न

होने देने के लिए सिर हिलाकर बोली—"नहीं.... ।"

"तो तुम इसे जरूर पढ़ो। अकेले घर में तुम्हारा मन शायद कुछ घबड़ाये। यह रेडियो है।...शामको हम सिनेमा चलेंगे, क्यों ?"

और आज, कई दिनों बाद वह अपने मिल में आया था। बलवन्त के रोम-रोम से आज प्रसन्नता टपक रही थी। ऑफिस के क्लर्कों ने चकित आँखों से देखा—यह सदा का शुष्क रहनेवाला प्रोप्राइटर कितना बदल गया है !

उसके आते ही सब उठ खड़े हुए। मैनेजर आगे बढ़ आया।

बलवन्त ने पूछा—"कहिए, सब ठीक है ?"

"जी"...मैनेजर ने विनीत भाव से कहा—"लड़ाई छिड़ने के कारण गवर्नमेंट से सात लाख का आर्डर मिला है....।"

'गुड न्यूज़" कहकर बलवन्त अपने राउंड-चेयर पर बैठ गया। सिगरेट सुलगाई ; फाइल देखने में मन लगाया।

बुलाने-वाली घंटी बजी। दरवान आया। बलवन्त ने कहा—"मिस्टर तिवारी को भेजो...।"

मिस्टर तिवारी आये। तीस की उम्र। धँसी आँखों पर चश्मा। सस्ती कमीज और धोती पहने। क्लर्क-जीवन का अभिशाप लिए मिस्टर तिवारी उपस्थित हुए।

"वेल मिस्टर तिवारी" बलवन्त आँखें उठाकर बोला—"ऑडिट तो आपने ही किया होगा ?"

"यस सर..." मिस्टर तिवारी के पैरों तले से जमीन खिसक गई।

"यहाँ देखिए, आपने ऑडिट में कितनी भद्दी गलती की है...।"

लालस्याही से मार्क किया हुआ वह स्थल मिस्टर तिवारी के हृदय में 'ठक्' सा लगा। वे सन्न हो गए। प्रोप्राइटर का स्वभाव उनसे छिपा नहीं है। किसी तरह की भूल माफ करना वह नहीं जानता। जानता है सिर्फ आहिस्ते यह कहना—'गो!'

और इस 'गो' के पेट में कितनी दिक्कतों और परेशानियों के बाद मिली हुई नौकरी उदरस्थ हो जाती है!

वे लड़खड़ाते स्वर में बोले—"सर...?"

"कहिए, आपकी क्या कैफियत है?"

"सर....इनदिनों मेरी स्त्री सख्त बीमार है। उसीकी दवादारु की चिन्ता में सर...।"

बात अधूरी सुनकर ही बलवन्त चौंक गया। पूछा—"आपकी औरत बीमार है?"

"यस सर, बचने की उमीद भी नहीं है।" मिस्टर तिवारी गीले शब्दों में बोले।

"क्यों?" फाइल रखकर बलवन्त उसके चेहरे की ओर देखने लगा।

मिस्टर तिवारी ने अटके गले से कहा—"सर, पैसे नहीं हैं। ४५) मिलते हैं; किन्तु इनसे कबतक डाक्टरों की फीस और दवा का दाम जुटा सकता हूँ?"

बलवन्त कुछ देर तक आँखें बन्द किए सोचता रहा। फिर

बोला—"अच्छा जाइए, मैनेजर को भेज दीजिए...ऑडिट में अब से ऐसी भद्दी गलती नहीं होनी चाहिए।"

मिस्टर तिवारी कुशल मनाते बाहर आये।

बलवन्त फाइल रखकर सिगरेट फूँकने लगा। मैनेजर आये। उन्होंने पूछा—"किसलिए याद किया सर?"

"देखिए, मिस्टर तिवारी को ५०) अभी दे दीजिए...इनकी स्त्री बीमार है और अगले महीने से ५) बढ़ा दीजिए।"

मैनेजर के लिए यह एक अचरज की बात थी। कभी तो प्रोप्राइटर क्लर्कों के प्रति उदार नहीं हुआ...आज?

"बस यही काम था...आप जा सकते हैं।"

इसके बाद बलवन्त फाइलों की ओर झुका। किन्तु मन नहीं लगा। आशा का सौम्य मुख बराबर फाइलों के बीच नजर आ रहा था।

दीवार-घड़ी ने चार बजाये, और वह उठ खड़ा हुआ। सिनेमा में अभी भी ढ़ाई घन्टे की देर है। टेलिफोन किया—"दो फर्स्ट क्लास रिजर्व।"

और हैट उठाकर मोटर पर जा बैठा।

मिस्टर तिवारी की कहानी क्लर्क-समुदाय में बिजली की तरह फैल गई थी। सभी चकित थे। मिस्टर तिवारी की धँसी आँखों में तो आनन्द के आँसू उमड़ आये।

एक क्लर्क ने मटकी मारकर अपने दूसरे सहकर्मी से कहा—"यह नई बीवी का असर है यार!"

[सात]

अविनाश अपने एक मित्र के यहाँ उतरकर लम्बी बुखार से पीला पड़ गया है। वह प्रेस-प्रतिनिधि होकर दिल्ली गया था। वहाँ से पंजाब और काश्मीर घूमने की इच्छा हुई। एक आवेदनपत्र भेजकर वह निश्चिन्त हो गया। लौटती बार आगरा उतर पड़ा अपने सहपाठी से भेंट करने। ताज की तरफ से घूम कर जब वह लौटा तो उसे बुखार आ गया था।

विनय ने कहा—"तुम्हारी आँखें कितनी लाल हो उठी हैं....देखूँ तुम्हारा हाथ ?"

हाथ गर्म था। माथा तवा हो रहा था। टेंपरेचर देखकर विनय बोला—"तुम्हें १०३° का बुखार है और तुम इस तरह हवा में घूम रहे हो !"

अविनाश चुपचाप बिछावन पर लेट गया। बुखार उतरने का नाम नहीं लेता था।

विनय भी चिंतित हो गया। कॉलेज में वह प्रोफेसर है। एक नौकर को छोड़कर और कोई भी प्राणी अविनाश को देखने के लिए नहीं है। अविनाश कॉलेज-जीवन का उसका एक अंतरंग मित्र है। एम० ए० 'इकनामिक्स' में अविनाश फर्स्ट क्लास फर्स्ट आया और विनय फर्स्ट क्लास सेकेंड। प्रोफेसरों को अविनाश की प्रतिभा पर पूरा भरोसा था। वे कहा करते थे—अविनाश आसानी से आई० सी० एस० में कंपीट कर सकता है। किन्तु अविनाश को क्या सूझा कि वह जरनलिज्म और मजदूरों की ओर झुका। पूछने पर बोला—"इस गुलामी की सांस से मेरा दम घुट जायगा।"

विनय ने प्रोफेसरी पर ही संतोष कर लिया। विवाह उसने भी नहीं किया है।

कई दिन वह कॉलेज नहीं गया। अविनाश के पास ही बैठा रहा। एकदिन अविनाश ही बोला—"क्यों अपना हर्ज कर रहे हो? कॉलेज जाओ। मैं तो अच्छा हो रहा हूँ।"

दोपहर की उदास वेला। चुपचाप लेटे मन नहीं लगता। हाथ में बर्नाड शॉ का 'मेजर-बार्बरा' है। पढ़ने की चेष्टा अविनाश करता है, किन्तु मन नहीं लगता। किताब तिपाई पर रखकर कुछ सोचने लगता है। आज अठारवाँ दिन है प्रेस छोड़े हुए।

सामने कार्लमार्क्स और लेनिन की तस्वीर है। जवाहरलाल

और कमला नेहरू का सम्मिलित फोटो आकर्षक है। गाँधीजी का हंसता हुआ पोज है जिसमें दो दाँत बाहर निकल आये हैं। कुछ ओरियंटल चित्र भी हैं। रविवर्मा और माइकेल ऐंजलो की कुछ कृतियाँ हैं रवीन्द्रनाथ का 'लीनो कट' फोटो हृदय को छू जाता है।

नौकर आकर 'ओरियंट' रख गया। बोला—"हुजूर दवा पीजिए।"

कड़वी घूँट निगलकर वह कुछ देर तक वह आँखें बंद किए रहा। नौकर बाहर हो गया।

और अविनाश 'ओरियंट' निकालकर अनमने भाव से देखता रहा।

...देखता रहा और एक जगह तो आँखें मानो अटक गईं! यह क्या भ्रम तो नहीं है?...

तस्वीर एक नवीन दम्पति की थी। नीचे परिचय था अँगरेजी में। उसका अर्थ है :—

"श्रीमती आशारानी भटनागर और श्री बलवन्त मलहोत्रा। आप लोगों का विवाह गत १० जुलाई को सानन्द संपन्न हुआ। वर कानपुर के एक सुप्रसिद्ध व्यवसायी, मिल मालिक, जमींदार और बैंकर हैं। वधू इलाहाबाद के सब-जज मिस्टर ज्ञानचन्द भटनागर की पुत्री हैं।"

और अविनाश की आँखें मानो अडिग हो रहीं। यह क्या संभव है?...सिर थाम कर उसने सोचा—इस चित्र को जो ध्रुव सत्य की तरह उसकी आँखों के सम्मुख है, कैसे अस्वीकार करे? वह कैसे

विश्वास करे—यह झूठ है—झूठ ! ऐसा कभी नहीं हो सकता—कभी भी नहीं !

सिर में भयंकर दर्द हो आया। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। टेम्परेचर में वृद्धि हुई। अविनाश प्रायः संज्ञाहीन हो गया।

चार बजे विनय लौटा। अविनाश को देखकर वह चकित रह गया। नौकर को डपट कर पूछा—ये कब से बेहोश हैं ?"

"मुझे नहीं मालूम हुजूर" नौकर घबड़ाकर बोला—"मैंने समझा, सो रहे हैं...दोपहर को दवा पिला गया था...।"

"इडियट" कहकर विनय पंखा झलने लगा। डाँटकर बोला—"गधा की तरह क्यों मुँह बाये है ? जाकर डाक्टर मित्रा को बुला ला।"

डाक्टर मित्रा आये। दवा दी। उससे थोड़ी देर में चेतना लौटी। डाक्टर ने पूछा—"कोई बुरी खबर आई थी क्या ?"

विनय बात न समझ सका।

डाक्टर ने कहा—"कोई साईकोलजिकल एफेक्ट है। दिल पर कोई सदमा पहुँचा है ?"

विनय नहीं सोच सका, वह क्या उत्तर दे ?

"वेल, आल राइट...माथे पर पट्टी दिलवाते रहिए। चार-पाँच घन्टे में सब नार्मल हो जायगा।"

नौ-दस दिन बाद अविनाश चलने-फिरने लायक हो गया। ग्यारहवें दिन वह अपना हाल-डाल ठीककर रहा था। विनय ने आश्चर्यभरे स्वर में पूछा—"यह क्या अविनाश....कहीं जाओगे ?"

"हाँ भाई, अब विदा चाहता हूँ।"

"अरे, अभी तो तुम कमजोर हो...एकाध सप्ताह और ठहरो।"

"ना भाई, तुम्हें बहुत परीशान किया...अब इजाजत दो।"

"परीशान?" विनय कुछ गंभीर हो गया—"तुम वह दिन भूल गये जब कॉलरे से तुमने मुझे बचाया था?...होस्टल में दो घूँट पानी देनेवाले तुम्हीं तो थे! सभी तो मौत के डर से भाग गये थे। तुम्हारी ही सिन्सेयारिटी से तो मैं मौत के मुख से लौट आया...।"

अविनाश ने देखा, विनय का कंठ भारी हो गया है!

अविनाश भी कातर हो उठा। कालेज-जीवन की स्मृतियाँ हरी हो गईं।

"किन्तु तुम्हारे साथ ट्रेजेडी क्या है, यह मैं नहीं जान सका। तुम इस तरह क्यों हो गए हो, यह मैं कैसे समझूँ?"

"कुछ नहीं है विनय, जिन्दगी तो एक जुआ है। आदमी की ट्रेजेडी कब रुकी है?...वह कब संतुष्ट हो सका है?"

विनय कुछ न समझ सका!

सूटकेस में कपड़े भरते हुए अविनाश बोला—"अब बीस-एक मिनट के करीब समय होगा। जल्दी नहीं करने से यह ट्रेन छूट जायगी।"

और जब ट्रेन खुली तो विनय का दिल फिर भर आया। रूमाल हिलाकर वह उसे देखता रहा...देखता ही रहा! वह भूल गया कि वह एक प्रोफेसर है—अर्थशास्त्र के गहन तत्वों में बझा रहनेवाला

एक दार्शनिक ! कुछ क्षणों के लिए वह एक भोला शिशु बन बैठा !

गाड़ी जब खुली तो अविनाश के मस्तिष्क में बहुत-सी बातें आईं।...तो क्या वह भ्रम में था ?...आशा क्या उसके साथ नाटक कर रही थी ? किन्तु हाय, यह नाटक तो उसके जीवन के लिए एक अभिशाप हो गया। यह खेल तो उसकी सारी 'भिटालिटी' को नष्ट कर चुका है...क्या यह खेल मृगतृष्णा ही प्रमाणित हुआ ?

आशा की मंजुल मूर्ति उसके हृदय से नहीं हट पाती। वह बार-बार हृदय का कुरेद ही जाती है। यह खोना तो उसे पागल कर देगा !....बचपन से ही वह खोता रहा है। बचपन में ही माँ को खोया, पिता को खोया, और अपने चाचा का स्नेह भी खो बैठा।...किन्तु हाय, यह खोना ? यह तो मौत है : जलन है।

संध्या को वह अपने डेरे पर पहुँचा। प्रधान-सम्पादक ने उसके चेहरे की ओर देखकर पूछा—"यह क्या अविनाश बाबू, आपका चेहरा इतना पीला क्यों है ?"

अविनाश जवाब न दे सका।

"आप बीमार थे शायद....?"

"जी।" कहकर वह अपने रूम में पहुँचा।

स्विच दाबकर वह आराम-कुर्सी पर लेट रहा। बड़ी थकावट मालूम हुई। सिर भी थोड़ा भारी लगा। उठकर उसने खिड़की खोल दी। हवा का ताजा झोंका आया और दिल को कुछ सांत्वना दे गया।

इतने में दफ्तर का चपरासी आया। बोला—"आपके नाम की डाक है।" और रखकर लौट गया।

अविनाश ने उपेक्षा भरी निगाह फेंकी। कई मासिक और साप्ताहिक पत्र हैं। सम्पादकों की चिट्ठियाँ भी हैं—लेख के लिए। हठात् एक हरा लिफाफा पैकेट के भीतर से टपक पड़ा—हरा लिफाफा!

अविनाश ने देखा, यह तो आशा का पत्र है। हृदय धड़कने लगा। चंद पंक्तियाँ थीं—अस्त-व्यस्त,—मानो उन्हें मुश्किल से कागज पर बाँध रखा गया है!

'अविनाश,

तुमने आखिर मुझे रुलाया ही। कल मेरा ब्याह है। तुम्हारी कितनी याद आ रही है, यह मैं कैसे लिखूँ?....जी में बहुत कुछ आता है। और लिखा नहीं जाता। माफ करना।

तुम्हारी, आशा,

पत्र हाथ से छूट पड़ा। सिर घूमता लगा। आँखें मींचकर अविनाश कराह उठा।

और वह रात मानो प्रलय की रात थी। आषाढ़ का आकाश रह-रहकर गरज उठता था। आँधी का एक प्रबल झोंका आया और कमरे की चीजों को अस्त-व्यस्त कर गया। कनुदेशाई का एक कलात्मक चित्र फ्रेम में टँगा था; वह गिर कर चूर-चूर हो गया।

अविनाश खिड़की के और भी पास आ खड़ा हुआ। कुछ नन्हीं बूँदें मुख पर पड़ीं। सिर के बाल हवा में लहरा उठे।

अविनाश ने देखा -- अंधकार है -- घोर अंधकार !

कुछ दूरी पर प्रोफेसर चटर्जी रहते हैं। उनकी लड़की रवि बाबू की 'गीतांजलि' का एक गीत पियानो पर गा रही है : --

'जानि आमार कठिन हृदय
चरण राखार योग्य से नय
सखा तोमार हाउया लागले हियाय...
तबू की प्राण गलबेना ?
आड़ाल दिये लूकिये गेले चलबेना.... !'

अविनाश संगीत की स्वर-लहरी को सुनता रहा....सुनता ही रहा; और जब हवा में आती हुई कंपन-ध्वनि विलीन हो गई, तो उसने एक दीर्घ सांस ली।

[आठ]

उर्मिला विधवा हो गई। सत्रहवाँ वसन्त अभी-अभी ही उसे छूने को था। और वह विधवा हो गई। पीली चीर का रंग अभी ताजा था कि भाग्य ने उस पर सुफेदी फेर दी। माँग का सिन्दूर साफ हो गया ; हाथों की चूड़ियाँ फोड़ डाली गईं।

लजवन्ती ने मुँह टेढ़ाकर कहा—"कैसा जला कपाल लेकर आई थी!"

पानी भरती हुई जग्गू की माँ ने लछमिन से कहा—"यशोदा काकी की बात क्या कभी झूठ हुई है री लछमिन ?...तभी तो देखते हो कह दिया—यह अपने खसम को खायगी....खाकर ही रही तो!"

और उर्मिला तो कुछ सोच ही न सकी। उसकी आँखों के

आँसू को भी इस व्यथा ने सोख लिया। जी खोलकर अभागिन रो न सकी!

बड़ी-बड़ी नीली आँखें फैला वह विक्षिप्त-सी देखती रहती। आँगन में बैठकर सूने आकाश को देखती। सोचती—हाय, यह कैसा वादा है जो कहकर नहीं लौटे! उसका कोमल हृदय यह स्वीकार करने में असमर्थ था कि वह सब कुछ खो चुकी है!

रात की सूनी घड़ियों में जब वह चटाई पर लेटी रहती तो बहुत-सी बातें याद आतीं।—लड़कपन याद आता। माँ की मृत्यु याद आती। पिता का दूसरा ब्याह याद आता। और फिर नई माँ का भयंकर रूप—कटु वचन—झिड़कियाँ! किन्तु पिता थे जो उर्मिला को दुलार ही करते रहे। कर्ज लेकर उसका ब्याह किया। खुशियाँ मनाईं।

और आज? आज वह विधवा है। कुछ ही दिन पहले वह कुमारी से 'वधू' बनी थी और आज वह 'वधू' से 'विधवा' है!

रात की भयंकर नीरवता मानो काट खाने दौड़ती। झिंगुर के स्वर सुनाई पड़ते और रह-रहकर गाँव के चौकीदार का—'होशियार, जागते रहियो।'

कभी इस करवट...कभी उस करवट! नींद नहीं आती—नहीं आती। आँखें कुछ ढूँढ़तीं....कान किसी की पगध्वनि सुनने को आकुल रहते।

याद आते वे दृश्य....

वे रात्रि के ऐसे ही सन्नाटे में आते। हल्की रोशनी जलती रहती। वह चुपके आते, दबे पैरों आते। हाथ में जूही की माला रहती।....वह रूठती.... वे मनाते....

हाय, आज वे इतने क्यों याद आ रहे हैं....क्यों? हृदय को मानो कोई नोच रहा हो। बड़ी पीड़ा होती।...

मैके से पिता आये। उर्म्मिला लिपट गई। पिता रो पड़े। रुँधे गले से बोले—"मैंने उस जनम में कोई बड़ा पाप किया होगा बेटी....!"

उर्म्मिला सुबक-सुबककर रोती रही। बहुत दिनों का बाँध टूटा था।

पिता ने पूछा—"घर चलोगी बेटी....?"

किन्तु दुनिया की इन थोड़ी घटनाओं ने ही उर्म्मिला को प्रौढ़ बना दिया था। वह जानती थी, अभी घर लौटने का परिणाम क्या होगा! सौतेली माँ के व्यंग्यबाण उसके कलेजे को छेदते रहेंगे और इससे उसका दुःखी पिता और भी कातर हो जायगा।

उर्म्मिला ने स्थिर स्वर में कहा—"अभी नहीं जाऊँगी बाबूजी।"

पिता लौट गये।

और उर्म्मिला का सूनापन भयंकर हो उठा।

लजवन्ती देवी कुछ दिन तक अवश्य उदार रही किन्तु उसका असली रूप शीघ्र ही अपनी जगह पर आ गया। बोली—"इस तरह हाथ पर हाथ धरकर बैठने से तो काम नहीं चलेगा!"

इसके बाद कुछ व्यंग्य, कुछ ताने, जो लजवन्ती देवी के कोष में सुरक्षित थे, काम में आने लगे।

उर्म्मिला भी अपने को बहलाए रखने की ही चेष्टा करती। काम की भीड़ में अपने को खो वह उस पीड़ा को भूल जाने की कोशिश करती।

कुछ सप्ताह इसी तरह कटे। उर्म्मिला ने अपनेको उस साँचे में ढाल लिया। काम....निरन्तर काम। वह अपनेको अवकाश देना नहीं चाहती थी।

इतने में उसके जीवन में एक नया अंधड़ आया, एक नया तूफान!

उर्म्मिला ने सुना—श्यामसुन्दर आया है।

श्यामसुन्दर मुकुलजी का दूर के रिश्ते का चचेरा भाई है। इसी गाँव में उसकी अलग पट्टीदारी है। शहर के कॉलेज में पढ़ता है। बड़ा ही हँसमुख और वाचाल।

वह आया। उसने उर्म्मिला को देखा। उर्म्मिला नहाकर बाल सुखा रही थी। तरुण श्याम ने देखा—रूप अंगड़ाई ले रहा है!

और आहट पाकर उर्म्मिला जो चौंकी तो उसने पाया—वह एक अपरिचित युवक के सामने है। लाज से वह लाल हो उठी। सिर पर आँचल खींच लिया।

श्याम ने कहा—"भाभी...?"

शब्द जैसे कलेजे के आरपार हो गया।

उर्म्मिला ने भागना चाहा, पर भाग न सकी। पैर मानो जकड़ गये थे।

श्याम ने कहा—"शादी में न आ सका भाभी...बीमार था। पर" वह रुककर उर्म्मिला को भर नजर देख बोला—"पर मैं क्या जानता था भाभी कि यह शादी बरबादी होकर रहेगी...!"

उर्म्मिला का जी घुटने लगा।

श्याम ने कहा—"रामरूप भैया हमसे दो महीने बड़े थे। गाँव में हमलोग एक ही स्कूल में पढ़ते थे...उनसे हमारी बड़ी निभती थी।"

उर्म्मिला का चेहरा लाल हो उठा। वह क्या उत्तर दे...? ....गाँव के संस्कारों में पली, वह इस पढ़े-लिखे अपरिचित युवक से कैसे बातें करे ?...

इसी समय लजवन्ती देवी की आवाज आई—"लल्ला, तुम्हारा नाश्ता रक्खा हुआ है।"

जान बची, लाखों पाये !

श्याम बोला—"छुट्टी भर तो यहीं रहूँगा। एकदिन मेरे घर न आओगी भाभी...? यही चौधरी टोले में ही तो मेरा घर है।" और श्याम, उर्म्मिला की ओर चुभती दृष्टि से देख, चला गया।

उर्म्मिला चुपचाप बैठी रही। श्याम आंधड़ की तरह आया और उसके हृदय में कुछ बिखेर गया। उर्म्मिला सोचती रही—बहुत कुछ सोचती रही।

बाहर दालान में सुकुलजी गीता का पाठ कर रहे थे :

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम।"

× × ×

इधर श्याम का इस घर में आना एक साधारण-सी बात हो गई है। वह एफ० ए० में पढ़ता है। संस्कृत उसने ले रक्खी है; और सुकुलजी से संस्कृत पढ़ने वह प्रायः रोज चला आता है।

सुकुलजी को अपने पांडित्य पर गर्व है; और वे बड़े उत्साह से अपने इस नये शिष्य को, काशी में पढ़ी हुई अपनी विद्या का जौहर दिखलाते हैं।

श्याम तब आता है जब सुकुलजी कहीं बाहर गए रहते हैं। उस छोटे-से अवसर में वह उर्म्मिला की एक झलक देख ही लेता है।

उर्म्मिला श्याम से सहानुभूति के कुछ कण पाती है; और इस कारण उसका घायल मन बहुत कुछ शान्त हो जाता है।

लजवन्ती देवी का शासन इन दिनों खूब कड़ा है। जबतक वह उठकर आठ-दस जलीकुटी नहीं सुना लेती तबतक भोजन नहीं करती। अपने काले मोटे ओठों को विकृतकर कहती—"बीबीजी की अभी नींद ही नहीं टूटी है! दिन कितना निकल आया!... इसी कुलच्छन के कारण तो राँड़ हुई...अब क्या घर का सत्यानाश करने का इरादा है?..."

उर्म्मिला अपनी कच्ची नींद से उठ बैठती। दस बजे रात तक तो उसे चैन से बैठने नहीं दिया जाता: और फिर ये अभागी आँखें

हैं, जो लगने का नाम नहीं लेतीं ...। सुबह जो थोड़ी तन्द्रा आती है उसे भी लजवन्ती देवी की पैनी छुरी काट जाती है !

और आज तो मन और भी भारी है। बुखार शायद चढ़ आया है। सिर का दर्द भी कम नहीं होता।

फिर भी उर्म्मिला उठी। जेठजी की पूजा के सामान ठीक किए। पूजा घर को धोई। आग सुलगाई। आंटा गूथने बैठी।

रसोई-घर से बारह बजे छुट्टी मिली। नहाकर वह ज्योंही चटाई पर बैठी, सारा शरीर ठंढ से काँपने लगा। उस दिन खाया कुछ नहीं गया।

लजवन्ती देवी रंग-ढंग देखकर विकृत स्वर में बोली—"'आठ-आठ बजे तक सोने से और क्या होगा ? पड़ी-पड़ी बुखार बुला लिया ! ... अब खिदमत करो !"

कुछ देर में श्याम पहुँचा। आज मुकुल जी कहीं दूर, किसी भक्त को पितृ-तर्पण कराने गये थे। लजवन्ती ने कहा—"लल्ला, जरा वैद के यहां से दवा तो ले आओ। तुम्हारे भैया बाहर गये हैं।"

श्याम ने उत्सुक होकर पूछा—'छोटी भाभी को बुखार है ?"

"हाँ, वही सुखरोग लेकर पड़ी है कलमुँही....।" लजवन्ती देवी ने विकृत ओठ को और भी भद्दा बनाकर कहा।

श्याम बिना कुछ कहे उर्म्मिला के कमरे में आया। उर्म्मिला अपनी पूरी संज्ञा में न थी।

श्याम ने अपना शीतल हाथ उर्म्मिला के माथे पर रखकर कहा—"भाभी...!"

उर्म्मिला के माथे पर यह स्पर्श बड़ा ही शीतलप्रद था। वह इस थोड़ी सी सहानुभूति पाकर घुल गई। आँखें छलछला उठीं।

श्याम ने कहा—"तुम्हें तो खूब बुखार है भाभी....तुम इस तरह चटाई पर क्यों पड़ी हो ?"

उर्म्मिला के आँसू उमड़ते ही आए। बोली—"मैं मरना चाहती हूँ श्याम बाबू...।"

श्याम ने बात काटकर कहा—"छिः भाभी! दिल क्यों छोटा करती हो ? बुखार जल्द छूट जायगा। मैं वैद्यजी के यहाँ जाता हूँ।"

वैद्यजी की दवा ने अपना असर दिखलाया; और घायल हृदय पर श्याम की फुहारों ने नवजीवन प्रदान किया। उर्म्मिला अच्छी हो चली।

श्याम की बातों से उर्म्मिला ने समझा—यह आदमी देवता है! दूसरे के दुःख में किस तरह पिघल जाता है! श्याम को देखते ही उर्म्मिला को अपने 'वे' याद आ जाते हैं।

उसदिन जमींदार के यहाँ कथा का आयोजन था। मुकुलजी कथावाचक थे। लजवन्ती भी अन्तःपुर से निमन्त्रित थी। घर पर उर्म्मिला अकेली थी। खाना आज नहीं बनाना था। जमींदार के यहाँ से ही पकवान आने की बात थी।

और ऐसे ही मौके पर श्याम आ पहुँचा।

बोला—"भाभी....?"

उर्म्मिला का कलेजा धक् हो गया।

श्याम तिपाई पर बैठ रहा। बोला—"भाभी, जिसदिन तुम्हें नहीं देखता हूँ, उसदिन मेरा मन बड़ा उदास रहता है!"

उर्म्मिला की छाती धड़क उठी।

श्याम बढ़ आया। उर्म्मिला न हट सकी; न जा सकी। श्याम सामने ही खड़ा था। उसने कहा—"तुम्हारी यह उम्र क्या रोने की है भाभी?"

उर्म्मिला को काटो तो खून नहीं!

श्याम ने उर्म्मिला का हाथ कसकर पकड़ लिया। बोला—"एक बात कहूँ भाभी...?"

स्पर्श से उर्म्मिला को लगा जैसे सारी धमनियाँ रुक गई हों!

हाथ छुड़ाने की चेष्टा कर बोली—"आप यह क्या कर रहे हैं?... कोई देख लेगा तो क्या समझेगा?..."

"यह मैं जानता हूँ भाभी कि इस समय कोई नहीं है। तभी तो आज अपनी बात कहने को आया हूँ।"

उर्म्मिला रोने-रोने को हो आई।

श्याम ने उच्छ्वसित कंठ से कहा—"भाभी, जिसदिन से तुम्हें देखा है, अपनी सुधि भूल गया हूँ...।" और श्याम की आँखें चमक उठीं। उसने उर्म्मिला को अपनी बलिष्ट भुजाओं में खींच लिया।

उर्म्मिला अचेत हो गई। 'सेक्स' की भूख उस श्याम नामधारी तरुण में, जो बहुत दिनों से दबी थी, आज सारे बन्धन तोड़ नग्न रूप में प्रकट हुई!

और जब उर्म्मिला की चेतना कुछ लौटी तो उसने पाया, उसकी साड़ी अस्तव्यस्त है : छाती की धड़कन तीव्र है : आँखें जल रही हैं : और हाय, उसकी चिरसंचित निधि मानो धूल में बिखर पड़ी है!

उसे लगा, मानो वह पहाड़ से ढकेल दी गई हो। उसकी सारी संज्ञा कुंठित-सी प्रतीत हुई। उसकी सांसों में उबाल आ गया। वह कुछ देर तक आँखें फाड़-फाड़ कर देखती रही...समझती रही...।

और इसी समय प्रलय के समान लजवन्ती आ पहुँची!

दरवाजा पूरा बन्द न था। एक ही धक्के से किवाड़ खुल गए। और फिर लजवन्ती देवी की दो छोटी कुत्सित आँखों ने जो कुत्सित दृश्य देखा तो वे चमक गईं। देखा—उर्म्मिला के बिखरे केश को : उसके नग्न वक्षस्थल को, और साड़ी की सिकुड़न को!...बगल ही में सिर झुकाए श्याम बैठा था। उसकी कमीज के बटन खुल गए थे। साँस बड़ी तेजी से चल रही थी।

"यह बात है...?...क्यों लल्ला, संस्किरित पढ़ना और छोटी भाभी की सेवा करना इसीलिए था?....बड़े भाग से मैं परात लेने लौटी थी नहीं तो ऐसा लुभावना...!" लजवन्ती देवी की कुत्सित हँसी उस सन्नाटे को छेद कर गई।

साथ ही उधर, जमींदार के घर में कथा के पहले अध्याय की समाप्ति पर घंटी, घड़ियाल और शंख की ध्वनि गूँज उठी।

एकाएक ही श्याम उठा और फुर्ती से बाहर हो गया।

उर्म्मिला को चेतना जब पूर्णरूप से लौटी और स्थिति की भयंकरता का आभास मिला तो वह अवसन्न रह गई।...हाय, उसके जले कपाल में यह भी लिखा था!...

लजवन्ती देवी ने चंडिका का रूप धारण किया। लातों से उर्म्मिला को मसल डाला। आँखें तरेर कर बोली—"यह तिरिया चरित्तर! आने दो उनको।"

उर्म्मिला न रोई, न चिल्लाई।

ग्यारह बजे रात को सुकुलजी आये। लजवन्ती देवी ने हाथ खींचकर कहा—"आओ इधर...।"

सुकुल जी बोले—"हरे हरे! यह क्या करती हो?"

"आओ भी।" कह कर जबरदस्ती सुकुलजी को खींच लिया। सुकुलजीने देखा, उर्म्मिला सिसक रही है।

पूछा—"बात क्या है?"

"बाहर आओ, बताती हूँ।" और फिर उस लुभावने दृश्य को अपने मधुर विशेषणों से अलंकृतकर लजवन्ती देवी ने जो बतलाया उससे सुकुलजी को पसीना आ गया। लड़खड़ाकर बोले—"यह कभी हो सकता है?....वह तो इतनी सीधी...!"

"सीधी ?" कहकर देवीजी ने ऐसा मुँह बनाया कि मुकुलजी को और कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई।

रात काफी हो चुकी थी। मुकुलजी ने गंभीर होकर कहा—"अब इस समय तो कुछ नहीं हो सकता...कल सुबह इसके बारे में विचार करेंगे।"

बात यहीं आकर खतम हो गई।

[नौ]

बलवन्त ने सिगरेट का कश खींचकर पूछा—"रानी, तुम एक बात बतलाओगी ?"

आशा ने आँखें उठाकर पति की ओर देखा।

"तुम्हारे चेहरे पर मैं असल खुशी नहीं देखता...जब तुम हँसती हो तो लगता है, यह जैसे बनावटी है !"

आशा चुप रही।

"तुम्हें कुछ दुःख है ? पिताजी के यहाँ जाना चाहती हो ?"

"नहीं।" आशा ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"किसी चीज की जरूरत है ?"

"नहीं।"

"मैं जानता हूँ, तुम कभी 'हाँ' न कहोगी...किन्तु भीतर तुम कुछ छिपा रही हो रानो...!"

आशा का हृदय धड़कने लगा।

"देखो रानी, मैंने तुम्हींको सबकुछ समझा है....किन्तु जाने क्यों मुझे तसल्ली नहीं हो रही है...लगता है, जैसे हमदोनों के बीच एक खाई है...।"

"खाई ?" आशा चिहुँक उठी।

सिगरेट की राख झाड़ता हुआ बलवन्त बोला—"लगता तो ऐसा ही है।"

आशा चुप रही...न बोल सकी।

बलवन्त उठ खड़ा हुआ। चहलकदमी करने लगा। फिर हैट उठाकर बोला—"जरा मिल का चक्कर दे आता हूँ।"

और बलवन्त के चले जाने पर आशा सोचती रही— क्या वह अपने पति को पूर्णरूप से अपना विश्वास नहीं दे सकती ?

...अविनाश की याद क्यों उसके मन-प्राण को इतना मथ जाती है ?...वह उसे भुला देगी। सोचेगी, वह एक स्वप्न था—स्वप्न, जो मिथ्या होता है !

रेडियो खोल कर बैठी। सोचा—मन लगेगा।

लखनऊ....हम लखनऊ से बोल रहे हैं।...अभी आप चम्पा बाई से ठुमरी सुन रहे थे...अब रसीदाबेगम से एक तड़पती हुई चीज सुनिये। बोल है—'दिन नहीं चैन, रात नहीं निंदिया....।'

'दिन नहीं चैन, रात नहीं निंदिया !' आशा गुनगुनाई। रेडियो बन्द कर दिया। यह तो रुलाने का सामान है !

उपन्यास लेकर बैठी...शरच्चन्द्र का 'शेष-प्रश्न।'...यह कमल है, जो आग ही आग उगलती है। धर्म, समाज, बंधन, संस्कार सभी इसकी चोट से तिलमिला जाते हैं। यह नारी है या एक 'डाइनामो...?'

उपन्यास रख दिया। खिड़की से बाहर देखने लगी। मनुष्यों का यह अविराम श्रांत...कर्म की यह निरन्तर जागरूकता !...

अगल-बगल कुछ सुन्दर बँगले हैं।...सामने मिस्टर प्रेमलाल बार-ऐट-लॉ...बायीं ओर, डाक्टर एस० सी० मजुमदार, एम० बी० एम० आर० सी० पी०।

और आशा ने देखा....उमड़ते हुए बादल....उमड़ रहे हैं कि उमड़ते ही आ रहे हैं। अभी धरती प्यासी है : भूखी है। मेघ पानी देगा। धरती तृप्त हो जायगी। फिर तृप्त धरती उसाँसें लेगी...गरम उसाँसें !

आशा ने सोचा, वह भी मानो एक धरती है—एक युग की प्यासी। प्यासी ही तो है !...कंठ भींगा कहाँ है ? यह तो सदा शुष्क ही रहता है !

खिड़की बन्दकर पलँग पर आई। फिर रेडियो का बटन घुमाया ...लखनऊ.... दिल्ली...कलकत्ता ... ढाका ... मद्रास ... बम्बई ...पेशावर !

थककर बन्द कर दिया। ओह, वह क्या करे ?....

फिर फाउन्टेनपेन उठाया। चिट्ठियाँ वह कल ही भेज चुकी है। अपनी सहेलियों को, अपने पिता को, और 'बेब' को भी।

हठात् एक प्रेरणा हुई। अविनाश के पास वह पत्र लिखेगी... लिख देगी—उसे लेकर वह बहुत परीशान है। उसे वह भूलना चाहती है। सदा के लिए उसकी स्मृति को अतल गर्भ में विलीन देखना चाहती है....

आशा ने लिखा....लिखा और काटा...

"अविनाश,

तुम क्यों आए मेरे जीवन में ? क्यों तुमने मेरे जीवन को इतना ढक लिया ? मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ....कोई नहीं। तुम गैर हो गैर। मैं तुम्हें कभी याद न करूँगी। मेरे पति हैं। मैं उन्हें चाहूँगी। वे मेरे देवता हैं। मेरे सबकुछ हैं। मुझ पर उनका अधिकार है। तुम मुझे भूल जाना....भूल ही जाना। सोचना, वह एक स्वप्न था, स्वप्न, जो मिथ्या होता है।

—आशा"

पत्र लिखकर उसने पढ़ा...कई बार पढ़ा।...नहीं, वह पत्र नहीं भेजेगी...पत्र भी नहीं भेजेगी। लेटर-पैड को उसने तिपाई पर पटक दिया। और फिर अँजलि में मुँह छिपा सिसक उठी। सिसकी और रोती रही। बिछावन पर पड़ रही...आँसू झरते गये। थककर वह सो गई।

चार बजे बलवन्त लौटा। आशा के कमरे में आया। आशा सोई थी। बलवन्त ने आशा के इस सुप्त सौंदर्य्य को देखा। देखा

और मंत्रमुग्ध-सा देखता ही रहा। अलकें छितरा गई थीं...कपोलों पर लाली थी।

बलवन्त कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़ा रहा। जी में आया, वह लौट जाय। आशा की निद्रा में व्याघात न पहुँचावे।

इतने में ही आशा ने करवट ली और उसकी अधखुली आँखों ने अपने पति को सामने पाया। वह उठकर बैठ गई। आँचल ठीक किया।

बलवन्त उसके पास चला आया। स्नेह-भरे शब्दों में बोला—"मैंने तुम्हारी नींद तोड़ दी...जी अच्छा है न?"

"जी।" कहकर आशा ने सिर झुका लिया।

तिपाई पर रक्खे हुए खुशनुमे पैड पर बलवन्त की दृष्टि गई। उस छोटे से सुन्दर पैड के कवर पर एक भागते हुए हरिण का कलात्मक चित्र था। बलवन्त ने उत्सुक होकर उसे उठा लिया।

आशा का कलेजा 'धक्' रह गया।...हाय, वह चिट्ठी भी तो इसीमें है...?...

बलवन्त ने कहा—"यह तस्वीर तो बड़ी अच्छी है!"

आशा कुछ न कह सकी।

"इसमें जो गिरता हुआ झरना है वह और भी...।"

"उसे मुझे दीजिए।" आशा अब अपने को न सँभाल सकी। उसका स्वर थर्राया और उस थर्राहट ने बलवन्त को चौंका दिया।

"क्यों, तुम इतनी घबड़ाई क्यों हो...?" कहकर बलवन्त ने पहला पेज उलटा।

और उलटने के साथ ही जो कुछ वह देख सका, उससे उसने पैड को और भी कसकर पकड़ लिया।

आशा का चेहरा सुफेद हो गया।

कई जगह काट-छाँट थी; किन्तु इससे पढ़ने में बलवन्त को कोई दिक्कत नहीं हुई।

पत्र पढ़कर एक कड़ी दृष्टि से उसने आशा के चेहरे की ओर देखा।

"तो यह बात है?" पैड को उसने आशा के निकट फेंकते हुए कहा।

और आशा ने देखा, बलवन्त का चेहरा एकाएक ही पीला पड़ गया है!

चट्टान की तरह शक्त आवाज में बलवन्त बोला—"आखिर तुमने मेरे विश्वास को रौंद ही डाला!" और यह कहकर, बड़ी तेजी से वह कमरे के बाहर निकल गया।

बाहर आकर, मुट्ठी बाँधकर, चहल कदमी करता रहा। दालान में एक आराम-कुर्सी पड़ी थी। बाद में उसी पर वह बैठ गया। आँखें मींचकर वह जाने क्या-क्या सोचता रहा। धीरे-धीरे संध्या हो आई; किन्तु वह न उठा; बैठा ही रहा।

बेहरा चाय का ट्रे लेकर पहुँचा। बोला—"हुजूर चाय का समय बीत रहा है...।"

"ले जाओ, नहीं पीऊँगा।" बलवन्त ने आँखें मींचकर उत्तर दिया। आवाज काफी शक्त थी। बेहरा की हिम्मत दुबारा पूछने की न हुई।

कुछ देर में रैकेट लेकर मिस्टर प्रेमलाल, बार-ऐट-लॉ पहुँचे। रैकेट नचाते हुए बोले—"आज आप क्लब नहीं गये?"

"जी नहीं, तबीअत अच्छी नहीं है।"

"क्यों, क्या हुआ है?" बारिस्टर साहब ने उत्सुकता दिखलाई।

"आज मुझे माफ करें...मैं अधिक नहीं बोल सकता।"

बारिस्टर साहब कुछ न समझ सके। उल्टे पैरों लौट गये। सोचा—आज बात क्या है? रोज तो हजरत दस-दस बजे तक गप्पें लड़ाया करते थे!

रात का खाना तैयारकर बेहरा फिर पूछने आया—"खाना ले आऊँ हुजूर...?"

"नहीं।"

बेहरा अपने हुजूर का स्वभाव जानता था: इसलिए उसने बात नहीं बढ़ाई।

बेहरा से खबर सुनकर आशा डरती-डरती वहाँ पहुँची। बोली—"आप यहाँ इस तरह बाहर क्यों पड़े हैं?...खाना...?"

"देखो आशा" बलवन्त की गरजती आवाज आई—"मुझे तंग मत करो।"

आशा ने अपने जीवन में पहली बार इस तरह की आवाज सुनी। सुनकर वह काँप गई।

काफी रात तक बलवन्त जागता रहा; और सुबह जब उसकी नींद टूटी तो नौ बज चुके थे। आशा भी उस रात न सो सकी। किसी अमंगल की आशंका से रह-रहकर हृदय धड़क उठता।

दस बजते-बजते बलवन्त ने हाथ मुँह धो डाला। नाश्ता कर चाय पी; और मोटर स्टार्टकर मिल की ओर चला।

अपने आफिस में आकर वह फाइल उलटने लगा। उसके चेहरे पर कुछ दृढ़ता आ गई थी। ऑडिट के हिसाब के आखिरी हिस्से को आज देख देना था।

बुलाने-वाली घंटी बजी। दरवान आया। बलवन्त ने बिना सिर उठाए कहा—"मैनेजर और मिस्टर तिवारी को बुलाओ।"

मैनेजर के अकेला आने पर बलवन्त ने पूछा—"और मिस्टर तिवारी कहाँ हैं?"

मैनेजर ने सिर खुजलाकर कहा—"वे अबतक नहीं आये हैं। उनकी स्त्री की हालत अबतक खराब है...।"

"सो मैं नहीं जानता!" मुट्ठी को टेबुल पर पटककर बलवन्त बोला।

इतने में मिस्टर तिवारी आये, हाँफते हुए। घबड़ाया हुआ चेहरा। गंदी और फटी कमीज। मुख पर दैन्य का भाव।

बलवन्त ने गरजकर पूछा—"घड़ी में कितना हो रहा है?"

"दस बजकर पैंतीस सर....!" मिस्टर तिवारी हलकाते हुए बोले।

"यह पैंतीस मिनट की देर मैं बरदाश्त नहीं कर सकता।" और ऑर्डर के स्वर में बोला—"मैनेजर...?"

मैनेजर ने आगे बढ़कर कहा—"यस सर...।"

फाइल उलटते हुए बलवन्त ने उसी स्वर में कहा—"मिस्टर तिवारी आज डिसमिस होते हैं...।"

मैनेजर हक्का-बक्का रह गया। मिस्टर तिवारी को काटो तो खून नहीं! गिड़गिड़ा कर बोले—"हुजूर...?"

फाइल से आँखें हटाकर बलवन्त ने तीखी आवाज में कहा—"गो!"

बात-की-बात में यह खबर क्लर्क-समुदाय में फैल गई। एक क्लर्क ने गंभीर होकर दूसरे से कहा—"बात कुछ समझ में नहीं आई, यार!"

[दस]

अविनाश कुछ दिनों तक विक्षिप्त-सा रहा। वह नहीं सोच सका, वह क्या करे? आफिस की ड्यूटी खतमकर जब वह अपने कमरे में आता तो बहुत सी बातें मस्तिष्क में चक्कर काटतीं।...उसे लगा, जैसे उसके जीवन की सारी समर्थता क्षय हो रही है। न कहीं जाता, न अधिक उत्साह से सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखने बैठता।

एकबार उसके पैर आशा के पिता के बँगले की ओर चले थे। उसने सोचा—उनसे ब्याह में अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा तो माँग लूँ। किन्तु पास जाकर भी वह भीतर नहीं जा सका। जाने क्यों भीतर से उसका मन रोने-रोने को हो आया। वह वापस लौट आया।

सूनी घड़ियों में पुस्तकें मित्र का काम देती हैं; किन्तु अविनाश उनमें भी अपने को न बहला सका।

एकदिन प्रधान-सम्पादक ने बुलाकर कहा—"अविनाश बाबू, आपको एक सूचना देने के लिए बुलाया है।"

अविनाश चुप रहा।

प्रधानजी कहते गये—"प्रोप्राइटर कानपुर से एक साप्ताहिक निकालना चाहते हैं। प्रेस इत्यादि जरूरी चीजें वहाँ पहुँच गई हैं। वे प्रधान-सम्पादक की जगह आपको ही देनेवाले हैं।"

"मुझे?" अविनाश चौंक पड़ा।

"हाँ, वे आपकी प्रतिभा से बहुत प्रभावित हैं। मैं भी जानता हूँ कि इस पद के लिए आपसे योग्य दूसरा व्यक्ति नहीं मिल सकता।"

अविनाश सोच रहा था—कानपुर!...इसी कानपुर में तो उसकी आशा भी है!

एकबार उसके जी में आया—वह कह दे, वह कानपुर नहीं जाएगा...नहीं जा सकेगा!

किन्तु यह विचार जाने किस प्रेरणा से आप-ही-आप दब गया। प्रधानजी बोले—"अगले रविवार तक आपको वहाँ पहुँच जाना चाहिए।"

अविनाश चुपचाप स्वीकृति जनाकर लौट गया।

और आज वह जा रहा है।

प्रोप्राइटर ने हाथ मिलाते हुए कहा—"मुझे आप पर पूरा भरोसा है। आशा है, पत्र अपने ढंग का एक होगा।"

गाड़ी खुली और अविनाश ने अपने प्रेस के सहकर्मियों से विदा माँगी।

कानपुर यह कानपुर है! मिलों और मजदूरों की नगरी! विदेशी वातावरण ने इसे ढक लिया है और यह गर्विता जैसे अपने अतुल रूप पर अंगड़ाई ले रही है!

अविनाश ने सोचा—यह उसके भाग्य का नया परिच्छेद है!

'शक्ति' का पहला अंक निकला। सामग्रियाँ काफी उच्च कोटि की थीं। समालोचकों ने लिखा—'हिन्दी-संसार में 'शक्ति' एक शक्ति लेकर आई है। इसके लेखों में आज है; इसकी वाणी में सचाई है।'

सम्पादकीय अग्रलेख में लिखा गया था—"शक्ति निर्बल, असहाय, शोषित और पीड़ित-वर्ग की बुलन्द आवाज होगी। अपने ध्येय पर यह पत्रिका बढ़ती जाएगी। राष्ट्र और साहित्य, युग और धर्म को लेकर 'शक्ति' अपने नाम को सार्थक करेगी।"

दूसरे अंक के अग्रलेख में निकला—'मजदूरो, एक हो!'

पत्र ने शिक्षित समुदाय को आकृष्ट किया। अनपढ़ मजदूरों ने सुना—उनकी आवाज बुलन्द करने के लिए एक अखबार निकला है!

प्रोप्राइटर ने तार भेजा—"यह सब बन्द कीजिए पत्र व्यवसाय के लिए निकाला गया है, मजदूरों की वकालत करने के लिए नहीं।"

किन्तु अविनाश अपनी शक्ति को पूरी तरह 'शक्ति' में लगा रहा था। वह नहीं सोच सका—प्रोप्राइटर इतने नग्न सत्य को क्यों नहीं देख रहा है ?

तीसरे अंक का अग्रलेख निकला—"मजदूरी बढ़ाओ।"

लिखा गया था—"मजदूरों का शोषण राष्ट्र का अपमान है। उन्हें भर पेट अन्न और ढकने के लिए वस्त्र तो मिलना ही चाहिए। ...पर हमारे ये मजदूर, जिनके बल पर ये आलीशान इमारतें खड़ी होती हैं, अंधकार में रक्खे जाते हैं। वे ऐसी 'कोठरी' में रहते हैं जिन्हें कोठरी कहना भी उनका उपहास करना है। उनसे अधिक से अधिक काम लिया जाता है और कम से कम पैसे दिए जाते हैं।... उनके बच्चे कीड़ों की जिन्दगी व्यतीत करते हैं और कीड़ों की मौत मरते भी हैं। आजकल की पैसे-वाली-शिक्षा न मिलने के कारण वे सदा मूर्ख, जाहिल और काहिल बने रहते हैं...वे अपने अधिकारों को नहीं पहचानते! उन्हें अंधेरे में रक्खा जाता है!...एक ओर जहाँ कुत्तों को दूध और डाक्टर मिलते हैं, वहाँ हमारे ये मनुष्य नामधारी अभागे बिना दवा के तड़प-तड़पकर जान देते हैं! यह मानवता का अपमान है। आदमीयत शर्म से सिर झुका लेती है।"

लोगों ने पढ़ा, और वे चकित रह गए। कलम की यह ताकत देखकर वे हैरान हो गए। मुर्दे मजदूर सुगबुगाए।

प्रोप्राइटर ने तार दिया—"यह सब बन्द करना होगा। मैं नहीं जानता था कि आप मुझे इस तरह धोखा दे सकते हैं!"

तार पढ़कर अविनाश सोच में पड़ गया। वह क्या किसी को धोखा दे रहा है?...महज मामूली बात है! 'आदमी को आदमी बनने दो।' यही तो वह चाहता है!...इनदिनों वह मजदूरों की बस्ती में रोज चक्कर लगाता है; और अपनी आँखों देखता है—आदमीयत कहाँतक गिर चुकी है!....वह इनदिनों इन प्रश्नों में इतना उलझा है कि और कोई समस्या उभर नहीं पाई है। अविनाश को इसमें तृप्ति है।

...मजदूरों की बस्ती में चक्कर लगाते हुए वह वहाँ के नारकीय दृश्य देखता है; और, उसकी आँखों में एक कठोरता आ जाती है। एक छोटे-से पानी के नल के पास वह इकट्ठी भीड़ को लड़ते देखता है....गन्दी गालियाँ कानों के पर्दे को छेद जाती हैं।...और ये शिशु? ...ये बच्चे? पेट निकला हुआ है...विकृत...घिनौने... मैले कुचैले...नंग-धड़ंग...पीली आँखें!

और ये लड़कियाँ हैं...जवान लड़कियाँ...इनकी पेबन्द लगी साड़ी से दुर्गन्ध आती है...सिर में तेल पड़े जमाना हो गया!... जुओं से भरी छोटी चोली...वक्ष की नग्नता आँखों को कुत्सित लगती है....दाँतों की मिस्सी घिनौनी मालूम होती है; और जब वे किसी पुरुष से बातें करती हैं तो अपने अंगों को तोड़-मरोड़ कर हाव-भाव की भंगिमा नग्न कर डालती हैं!

और ये मजदूर हैं...ताड़ी की लबनी पास में है...टीन का टूटा कनस्तर बीच में है जो ढोलक का काम देता है। ...गन्दी गालियाँ ...विकट हँसी...मारपीट और अन्त में वमन की दुर्गन्ध!

अविनाश दुर्गन्ध की असह्य यंत्रणा न सह सकने के कारण जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता है। कुछ दूर जाने पर आलीशान इमारतें मिलती हैं....आलीशान इमारतें!

रेडियो की आवाजें आ रही हैं। मधुर कहकहों से वायु थर्रा उठी है।....एंडीनुमा जूता पहने....ओठों को लिपस्टिक से रँग...गालों पर पाउडर पोत, अपनी रेशमी साड़ी से तीव्र कस्तूरी की महक उड़ाती, हाथ में छोटा बैग ले. नाजभरी चाल से जाती हुई ये युवतियाँ!

और सूट में लैस, मुँह में पाइप, पीछे मोकर, बगल में कुत्ता लेकर मोटर उड़ानेवाले ये 'बाबू!'

अविनाश तुलना करने लगता है; वह बस्ती और यह बस्ती!

'शक्ति' के चौथे अंक के अग्रलेख में निकला—'आदमीयत की मौत' : लिखा गया था—"आदमीयत की मौत हो चुकी है। मनुष्यता की कब न मृत्यु हो गई है! 'मानव' नाम को कलंकित करनेवाले—उन अभागों की टोली में कोई जाकर देखे—हया सिर झुकाकर बैठी है : लज्जा नग्न हो पड़ी है!...इस इतने बड़े कलंक का जिन्दा रखना मानवीय इतिहास में सब से बड़ी दुर्घटना है।....यह चंगेज और तैमूर की पाशविक क्रूरताओं से भी अधिक भयंकर है।...तिल-तिलकर....घुला-घुलाकर....तड़पा-तड़पाकर मारना तैमूर के कत्ल-ए-आम से कहीं लोमहर्षक है। ये पूँजीपति चंगेज और तैमूर को भी काफी पीछे छोड़ आये हैं।"

चौथे-अंक का अग्रलेख पढ़कर प्रोप्राइटर दूसरे दिन स्वयं पहुँच गया। सीधा अविनाश के पास गया। मुट्ठी को टेबुल पर पटककर चिल्लाया—"आपकी यह हिमाकत है!"

अविनाश भौंचक हो गया।

प्रोप्राइटर गुस्से में बोल रहा था—"मैं नहीं जानता था कि मैं साँप को दूध पिला रहा था!...मुझे आपकी कोई जरूरत नहीं। आपने मेरी सारी स्कीम चौपट कर डाली...क्या आपको मालूम नहीं है कि इन मिल-मालिकों की ही बदौलत आपकी 'रोटी' चल रही है?...क्या आपको मालूम नहीं है कि इन मिल-मालिकों से मेरा पूरा सम्बन्ध है ...?"

अविनाश को बात अब समझ में आई। प्रोप्राइटर की लाल-पीली आँखों की ओर देख, निर्विकार स्वर में उसने कहा—"खैर, मुझसे भूल हुई। अब मैं चलता हूँ। अपना प्रेस सँभालिए।"

और वह बाहर हो गया।

बाहर आकर अविनाश एक ओर चलता चला। वह कुछ उधेड़-बुन में था। ...इस सारी नगरी से तो वह अपरिचित है!.... वह क्या करे?

आकर पार्क की एक बेंच पर बैठ रहा...बैठा ही रहा।

बहुत-सी बातें याद आने लगीं। एकदिन चाचा से झगड़कर वह इसी तरह कातर और अकेला हो गया था। फिर उसने लड़ना स्वीकार किया...लड़ता ही रहा। एकदिन वह एम. ए. भी हो

गया...किन्तु क्रूर नियति तो उसके पीछे पड़ी थी। बचपन की जो मधुर स्मृति, उसके कर्ममय जीवन में दब गई थी, एकदिन, आशा को देखकर बलवती हो उठी। अपने हृदय की सारी कामनाओं के साथ उसने आशा को प्यार किया। कल्पना की इमारत खड़ी हो गई...किन्तु ?...परिणाम 'ट्रेजेडी' होकर रहा...ट्रेजेडी ही !

आशा को खोकर उसने सोचा—वह कर्म करेगा—निरन्तर कर्म ! प्यार को कर्म से दबा देगा। आशा को सोचने का वह अपने को अवसर ही न देगा। वह संपादक है...राष्ट्र का एक हथियार है। उसके हाथ में 'शक्ति' है। वह अपनी शक्ति को 'शक्ति' द्वारा प्रदर्शित करेगा।...भूले हुए राहगीरों को उनकी मंजिल का पता बतलाएगा... किन्तु विडम्बना यहाँ भी होकर रही !...तुम्हें यह बतलाने की जरूरत नहीं कि सड़न की दुर्गन्ध कहाँ से आ रही है ?...जो सड़ता है, उसे सड़ने दो। तुम अपनी राह देखो। न हो तो नाक पर रूमाल रखकर दुर्गन्ध को भूल जाओ।

बहुत देर तक मस्तिष्क उधेड़-बुन में रहा। गोधूलि का समय हो आया। घास पर कुछ बच्चे दौड़ रहे थे...सुन्दर....लाल...मानो वे सजीव खिलौने हों !...उन बच्चों को देखकर अविनाश की दृष्टि कहीं और चली गई।...मजदूरों की संकीर्ण गली में खेलते हुए वे अभागे बच्चे !...निकला हुआ पेट...विकृत...घिनौने....

अविनाश उठ खड़ा हुआ। अपने होटल में लौट आया। रात में बड़ी देर तक नींद नहीं आई। विचारों की लड़ी चलती रही।'''वह

यहीं रहेगा···इन्हीं मजदूरों को जगाएगा। इन्हें 'आदमी' बनाने का मौका ढूँढ़ेगा। वह कायर की तरह भाग नहीं जाएगा। वह लड़ना जानता है....लड़ चुका है और लड़ेगा। ····अपने खर्च के लिए कोई नौकरी ढूँढ़ लेगा। यह नौकरी उसके कर्त्तव्य की पृष्ठभूमि होगी। अपना अधिक समय वह इन्हीं मजदूरों में लगाएगा।

दूसरी सुबह उसका मन कुछ हल्का था। उठकर उसने हाथ-मुँह धोया; चाय पी और होटल में आए हुए 'पायोनियर' उठाकर देखने लगा।

एक 'आवश्यकता' पर वह रुक गया। यह तो उसके मन के लायक नौकरी होगी। कानपुर के ही एक कॉलेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर की जगह खाली थी। प्रारंभिक वेतन २००)। एम. ए. फर्स्ट क्लास की माँग थी।

अविनाश ने आवेदन-पत्र तैयार किया। पोस्ट-आफिस जाकर एक लिफाफा खरीदा और पता लिखकर छोड़ आया।

सातवें दिन उत्तर आया—"आप नियुक्त किए जाते हैं। अगले सोमवार से आपको लेक्चर देने होंगे।"

पत्र पढ़कर अविनाश को खुशी हुई। खुशी इसलिए नहीं हुई कि उसे नौकरी मिली है : बल्कि इसलिये कि अब वह नये रूप से मजदूरों में जाग्रति लाएगा।

[ग्यारह]

रात्रि का सन्नाटा। निस्तब्ध रजनी मानो कालिमा का चादर ओढ़ अपनी गंभीर निद्रा में निमग्न है। उर्म्मिला की आँखें अबतक जल रही हैं।...उसने एक निश्चय किया है—सुबह का प्रकाश वह न देखेगी। वह किस मुँह लेकर अपने-पराये से मिल सकेगी? उसमें अब रह ही क्या गया है?...कल चारों ओर से ऊँगलियाँ उठेंगी; लोग घृणा की राशि उस पर बरसाकर कहेंगे—"तू कुलटा है...!"

"कुलटा...!" शब्द हृदय से टकराया।

और ये जेठजी....लजवन्ती जीजी....कल उसकी कैसी दुर्गति करेंगे, इसकी कल्पना से ही वह सिहर उठी।

एक विचार आया। क्यों न वह श्याम के पास जाय? कहे—"तुम हत्यारे हो। मैं नहीं समझती थी, तुम इतने खूँखार हो! अब मैं तुम्हारे पास आई हूँ। तुम्हें मेरा साथ देना होगा। तुम्हारे ही आगे अब मैं आँचल पसारने आई हूँ।"

और आधीरात के वक्त वह चौधरी के मुहल्ले में आ पहुँची। वह बढ़ती गई। वह श्याम के घर लजवन्ती के साथ एकदिन आ चुकी थी। पहचानने में भूल नहीं हुई। बाहर दालान में एक हरिकेन मैली लालटेन जल रही थी। उसके धुँधले प्रकाश में उर्म्मिला ने देखा, श्याम ही है!

श्याम अबतक सोया न था। उर्म्मिला उसके पास आई। बोली—"श्याम, मैं तुम्हारे पास आई हूँ।"

स्वर सुनकर श्याम चौंका। आवाज में दृढ़ता थी। वह घबड़ा कर बोला—"अरे तुम!"

"हाँ, तुम्हारे साथ भागने आई हूँ।"

"भागने!" श्याम का गला सूख गया।

"क्यों, तुम मुझे प्यार नहीं करते?" स्वर दृढ़ था।

श्याम चुप था।

"जवाब दो।"

श्याम ने आकुल स्वर में कहा—"इस समय जाओ...मेरे घर के लोग देख लेंगे तो...!"

उर्म्मिला कुछ क्षणों तक मौन रही। फिर तीखे स्वर में बोली—

"मैं जाऊँ ?...चली जाऊँ ?... अच्छा, जाती हूँ।" और बिना कुछ उत्तर की प्रतीक्षा किए वह चल पड़ी।

श्याम की थरथराहट अबतक दूर नहीं हुई थी। उर्म्मिला जब अंधकार में खो गई तो उसने एक दीर्घ सांस ली !

अंधकार को चीर कर उर्म्मिला बढ़ी...बढ़ती गई। सामने एक कुँआ था...बहुत गहरा, डरावना ! उर्म्मिला ने सोचा, क्यों न इसमें कूदकर सदा के लिए अपने को मुक्त कर ले ?...उसने कुँए में झाँक कर देखा—सिवा अंधकार के और कुछ नजर नहीं आता !...कूदने को तैयार होकर भी सहम गई। किसी दुर्बलता ने उसके पैर बाँध दिए। उसने सुन रक्खा था—'अपनी जान आप देना सब से बड़ा पाप है। आदमी पर किसी भी तरह की विपत्ति आए, दुःख कितना ही बड़ा क्यों न हो...यह सब से बड़ा पाप है ! इससे सारा कुल नरक में जाता है।'

उर्म्मिला थम गई। सोचने लगी—उसने क्या पाप किया है ?...उसके साथ तो जुल्म किया गया ! उसकी कमजोरी से फायदा उठाकर एक नरपशु ने अपनी गन्दी वासना की तृप्ति की।...नहीं, वह पापिन नहीं है, हरगिज नहीं है !

बढ़ा हुआ पैर उसने खींच लिया। कुछ देर तक मौन उस कच्चे कुएँ के पास खड़ी रही। फिर एक ओर चल पड़ी।

विचारों का बवंडर उठ रहा था।...वह अपने पिता के पास भी न जायगी...जब उन्हें सारी बातें मालूम होंगी तो उनके धार्मिक-

हृदय को बड़ा धक्का लगेगा ...हाय, वह अपने पिता के पास भी न जायगी !...

उर्म्मिला ने तय किया—वह शहर जायगी। कानपुर ही में तो उसके मामा रहते हैं।...वे आर्य-समाजी हैं और नए विचारों से गढ़े हुए। वे उसके दुःख को समझ आश्रय अवश्य देंगे।...लड़कपन में वे उसे कितना स्नेह करते थे !

वह चलती रही....चलती ही रही। समय की उसे तनिक भी सुधि न रही। रास्ता पक्का था। वह चुपचाप चलती रही। और थोड़ी ही देर में लगा, भोर होने होने को है।

वह थक गई थी। पास के पोखर में उसने हाथ-मुँह धोया और फिर चलने लगी...जोर-जोर से चलने लगी। प्रकाश में अपने को पाकर उसे भय लगा : अंधकार में वह निडर बढ़ी जा रही थी।

धीरे-धीरे दोपहर का सूरज ढल गया। उर्म्मिला अविराम चली जा रही थी।...गोधूलि की बेला आ गई। अब चला नहीं जाता। गला सूख गया है।

उर्म्मिला ने पाया, वह एक हाट में पहुँच चुकी है। वह चौंक उठी।...एक बनिए की दूकान के पास जा खड़ी हुई। कुछ देर तक हिचकिचाती रही। फिर बोली—"भैया, कानपुर यहाँ से कितनी दूर है ?"

बनिया दूकान बढ़ा रहा था। हरिकेन के प्रकाश में देखा—यह तो 'माल' है !

कुछ क्षणों तक सोचता रहा। फिर लापरवाही से बोला—"यही चौदह-पन्द्रह कोस !"

"चौदह-पन्द्रह कोस !" उर्म्मिला को काठ मार गया। कानपुर अभी चौदह-पन्द्रह कोस है ! उसका दिल बैठ गया।

बनिया इस 'माल' को एकटक देख रहा था। भूख और परिश्रम की क्लान्ति ने उसके सौन्दर्य्य में एक विचित्र आकर्षण पैदा कर दिया था।

उर्म्मिला की चेतना जब लौटी तो उसने बनिए की घूरती आँखों को अपने मुख पर पाया। बनिए की उम्र तीस-बत्तीस की होगी। दाँत घिनौने हैं। तोंद निकली है। छोटी दो आँखों से न जाने कैसा भाव टपक रहा है। घुटे हुए सिर पर टेढ़ी, मैली दुपल्ली टोपी। कनपट्टी से तेल चू रहा है। काला और चेचक भरा मुख।

उर्म्मिला कुछ कहने को सोच रही थी : किन्तु उसकी आकृति देख मन में घृणा हो आई। वह मुड़ने को हुई कि बनिया बोला—"कल सबेरे हम कानपुर माल लेने जायेंगे...यदि चाहो तो मेरी बैलगाड़ी पर बैठ रहियो।"

सुनकर उर्म्मिला ठिठक गई। सोचने लगी—कानपुर का रास्ता भी तो वह नहीं जानती !....अब और पैदल उससे चला नहीं जायगा...और अभी उसकी दशा कितनी दयनीय है !...कल से वह एक अन्न भी न पा सकी है...देह चूर-चूर हो रही है।

"अकेली हो ?" बनिया इस बार स्वर में सहानुभूति भर कर बोला।

"हाँ।"

"ससुराल से झगड़ आई हो ?" अपने मैले दाँतों को निपोरते हुए बनिए ने पूछा।

उर्म्मिला कुछ जवाब नहीं दे सकी।

"अच्छा....अच्छा...घबड़ाने की जरूरत नहीं। भूखन को अन्न और असहायन पर दया हमारे शास्तर में भी लिखा है...।" और फिर अपने स्वर को हल्का करते हुए चौकन्नी दृष्टि से देखकर वह बोला—"यहाँ गुंडे बहुत रहत हैं...तुम्हें अकेली पइहें तो तँग करिहैं....कहाँ सोओगी ?"

'गुंडे' का नाम सुनकर उर्म्मिला को पसीना आ गया। वह इस तरह कभी अकेली घर से बाहर नहीं हुई थी। रुँधे गले से बोली—"भैया, तुम्हीं ठिकाना लगा दो।"

बनिया सुनकर कुछ देरतक माथा खुजलाता रहा। फिर बोला—"अच्छा, तो तुम हमार दुकान में सो रहियो...हम गाड़ी पर सोई रहब।"

उर्म्मिला ने सोचा—यह आदमी भला है। तभी तो उसके स्वर में अपनापन का भाव है। वह कुछ सोचती रही : ठिठकती भी रही।

बनिया बोला—"कुछ खाई हो ?"

उर्म्मिला को बात अभी महसूस हुई। सच तो—भूख से उसका मन न जाने कैसा-कैसा कर रहा है!

"चावल-दाल दूँ, बनइहो ?"

उर्म्मिला से जवाब देते न बना।

"अच्छा, अब इतनी रात गये कहाँ बनइहो? थकी-माँदी भी हो...ये लो। बासमती चूड़ा है और बढ़िया गुड़। खाकर आराम करियो...।" और यह कहकर वह नीचे उतर गया। दूकान वह बढ़ा चुका था।

उर्म्मिला आगे बढ़ी। एक कोने में बैठकर वह खाने बैठी। इतने में बनिया आया। उसके हाथ में लोटा था। बोला—"यह पानी है।"

उर्म्मिला का हृदय कृतज्ञता से भर आया। सोचने लगी—मेरी आशंका निर्मूल है। आदमी भला है...तभी तो एक दुखिया पर दया कर रहा है।...नहीं तो गुंडों से भरी जगह में उसकी क्या दशा होती?...किन्तु, वह मुझे इस तरह घूरता क्यों था?.... वह रुक गई। हो सकता है, उसकी नीयत खराब हो।...कुछ देर तक उधेड़-बुन में रही।

लोटे का शीतल जल जब कंठ के नीचे उतरा तो बड़ी राहत मालूम हुई। और साथही उसकी विचार-धारा में भी शीतलता आ गई।...नहीं, ऐसी बात नहीं हो सकती। जो आदमी इस तरह असहाय पर दया कर सकता है, वह कभी कसाई न होगा...। ...शायद वह दूसरे कारण से घूरता हो!...सोचता हो—यह कौन है?...शायद मुझे तौलता हो।

इस विचार ने थोड़ी हिम्मत पहुँचाई। लोटा माँजकर वह उसे वापस दे अपने स्थान पर आ गई।

बनिया फिर लौटा। उसके हाथ में एक पुरानी दरी और एक गंदा तकिया था। आगे बढ़कर बोला—सोओगी किस पर?... ये लो...।"

उर्म्मिला ने सकुचाकर कहा—"भैया, मैं चटाई पर सो रहूँगी... मैं यह सब न लूँगी।"

बनिए ने कोई आपत्ति न की। वापस लौट गया।

उर्म्मिला चटाई पर लेट रही। कुछ देर तक कल्पनाओं की लड़ी गूँथती रही। वह थकी-माँदी थी। रात और दिन की थकान ने उसके अंग-अंग में पीड़ा भर दी थी। आँखें आपही-आप मुँदने लगीं...वे मुँद गईं।

आधी रात...

आधी रात के उस निस्तब्ध प्रहर में एकाएक ही उर्म्मिला की नींद टूट गई। उसे लगा, जैसे कोई उसके वस्त्र खींच रहा है!... घबड़ा कर वह उठ बैठी; और अपने सामने बनिए को देखकर तो वह सन्न रह गई।

बनिया अपने मैले दाँतों को निपोर कर कह रहा था—"हें...हें... तू तो परी है...तू कित्ती खूबसूरत है!"

उर्म्मिला को मानो बिजली छू गई। सिर चकरा गया। बनिए के हाथ में अब भी उसकी साड़ी का छोर था!

"आओ प्यारी....कलेजे से लगालूँ... तोहे हम रानी बनइहों ....हम रँडुआ हैं...।" बनिया घिघिया कर बोला।

"छोड़ो...छोड़ो मेरी साड़ी" कहकर उर्म्मिला ने साड़ी छुड़ाने की चेष्टा की। किन्तु बनिए का हाथ इतना कमजोर नहीं था!

दाँत निपोर कर उसने कहा—"रूठो हो रानी...काहे रूठो हो? ....हम तो तुम्हारे हैं....काहे नखरा करो हो?...." कहकर बनिए ने साड़ी का पल्ला खींच लिया।

कमजोर उर्म्मिला बनिए की मोटी तोंद पर गिरी।

"हें...हें....काहे चमको हो राजा?....तोहे रानी बनइहों...।"

बनिए की दुर्गन्ध-भरी सांस से उर्म्मिला का दम घुटने लगा। सारा जोर लगाकर वह एक ओर छिटक गई। हाँफकर बोली—"कुत्ता कहीं का....दूर रह!"

किन्तु बनिए में 'सेक्स' पूरे उभार पर था। वह अपनी गंदी वासना को तृप्त करने के लिए बेचैन हो उठा। बोला—"कहाँ जइहो राजा?...चूड़ा-गुड़ क्या सेंत में आवत है....?"

उर्म्मिला ने देखा—पिशाच उसकी ओर लपका ही आ रहा है। ...अचानक एक पूरी ईंट का आधा टुकड़ा उसके पैरों से टकराया। फुर्ती से वह झुकी और उठा लिया। टुकड़ा काफी बड़ा था।

तब तक कामान्ध बनिए का हाथ भी उर्म्मिला के वक्षस्थल तक पहुँच रहा था।

"दूर हट सूअर....।" और, पूरे जोर के साथ बनिए की घुटी

खोपड़ी पर ईंट पड़ी। बनिया लड़खड़ाया और 'ओफ्फ्' कहकर बैठ गया। खून का फव्वारा छूट पड़ा। उर्म्मिला ने हरिकेन की टिमटिमाती रोशनी में लाल रंग का फूटता फव्वारा देखा!

वह कुछ देरतक ठिठकी रही; फिर तेजी से बढ़कर उस अंधकार में विलीन हो गई।

[बारह]

अंधकार। घोर अंधकार। उर्मिला आगे बढ़ी जा रही है। मस्तिष्क में फिर तूफान उठ खड़े हुए हैं।...क्या दुनिया में 'विश्वास' का ऐसा ही फल मिलता है?...यह मीठी बातें करनेवाला बनिया!

नींद पूरी नहीं हुई थी; सिर में दर्द और आँखों में जलन पैदा हो चली थी। किन्तु वह रुकना नहीं चाहती थी। वह जानती थी, रुकना उसके लिए घातक है।....बनिया गुस्से में अपने मैले दाँत पीसता होगा....संभव हो, वह दौड़ा भी आ रहा हो।...और इस ख्याल ने उसके पैरों में गति भर दी। वह चलती क्या रही, दौड़ती रही!

अब प्रभात का धुँधला प्रकाश दीख रहा था। उर्म्मिला को हठात् याद आया, क्या वह कानपुर के रास्ते पर है?....कहीं वह दूर भटक गई तो फिर मनुष्य-नाम-धारी भेड़ियों से भेंट होने की संभावना है!

धुँधलापन हट गया था। उर्म्मिला ने देखा, दो-तीन प्राणी इसी ओर आ रहे हैं। वह रुक गई। निकट आने पर मालूम हुआ—एक स्त्री, एक पुरुष, और एक लड़का है।

उर्म्मिला ने क्लान्त स्वर में पूछा—"कानपुर यहाँ से कितनी दूर है?"

"पाँच-छः कोस के करीब।" अधेड़ देहाती ने उत्तर देकर प्रश्न की आँखों से देखा।

उत्तर सुनकर उर्म्मिला को थोड़ी खुशी ही हुई।

"हम भी वहीं जाते हैं...संक्रान्ति के मेले में गंगा नहायेंगे और शहर घूमेंगे...।" साथ के ग्यारह-बारह वर्ष के लड़के ने उत्साहित होकर कहा।

इस बार औरत ने मुख खोला—"तुम भी वहीं जाती हो?"

"हाँ।"

"अकेली हो?"

"हाँ।" उर्म्मिला का थका हुआ उत्तर था।

स्त्री चुप हो गई। उर्म्मिला के सौन्दर्य्य ने उसके मन में खटका पैदा कर दिया। कुछ ठहरकर बोली—"तुम्हारा पहिनावा तो विधवा-सा है!"

"विधवा ही हूँ !" शान्त उत्तर था।

"शहर में कोई अपना आदमी है ?"

"हाँ।"

"ससुराल से कोई खटकाकर आई हो ?"

प्रश्नों से वह परीशान हो गई थी। इसबार जवाब नहीं दिया।

स्त्री ने उसे 'मौन' पाकर 'स्वीकृत' का अर्थ लिया।

चारों व्यक्ति चलते रहे। रास्ते में एक कुएँ के पास वे रुके। हाथ-मुँह धोया और फिर साथ में लाई हुई रोटियाँ खाने बैठे।

उर्म्मिला भी हाथ-मुँह धोकर थोड़ी स्वस्थ हुई।

स्त्री ने पूछा—"तुम्हारे पास खाने को तो कुछ है ही नहीं. क्या खाओगी ?"

"मुझे भूख नहीं है।"

"भूख क्यों न होगी ?....आओ, एकाध रोटी खाकर पानी पी लो।" आग्रह भरे स्वर में स्त्री बोली।

"नहीं, मुझे सचमुच भूख नहीं है।" उर्म्मिला झिझककर बोली।

"तुम जात जाने के डर से नहीं खा रही होगी...हमलोग ब्राह्मण हैं...सरयूपारीण।" स्त्री उसका हाथ पकड़कर खींच ले गई। उर्म्मिला को लाचार होकर दो-चार कौर खाने ही पड़े।

....और वेला ढलते-ढलते वे कानपुर पहुँच गये।

लड़के ने उत्साहित होकर कहा—"यही कानपुर है !"

उर्म्मिला की संज्ञा लौटी। अब वे शहर के मध्य भाग में पहुँच चुके थे।

पुरुष ने पूछा—"तुम किस मुहल्ले में जाओगी?"

उर्म्मिला ने अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर देकर कहा—"गरेड़िया मुहाल।"

"हम तो धर्मशाले में ठहरेंगे।" पुरुष बोला।

उर्म्मिला की भी इच्छा हुई, वह भी साथ ठहर जाए। आज वह क्लान्त थी और फिर, इस इतने बड़े शहर में अपने आपको अकेली पाकर वह डर रही थी।....किन्तु साथ ही कल रात की घटना का स्मरण कर उसे रोमांच हो आया।....कौन जाने, इस पुरुष में भी वही पशु छिपा बैठा हो...! वह अपनी छाया से भी डरने लगी थी!

वे अलग हो गये।

उर्म्मिला भय से यह न पूछ सकी कि वह मुहल्ला किस ओर है...?...उसने मुहल्ले का नाम भर सुना था।

वह एक ओर चलती गई। रास्ते में जाते हुए एक बूढ़े सज्जन से वह पूछ बैठी—"गरेड़िया मुहाल किस ओर है?"

बूढ़ा संभवतः चिड़चिड़े मूड में था। झल्लाकर बोला—"ऐसे जाओ...।"

सामने एक गली थी। उर्म्मिला ने समझा, इसी गली की ओर से रास्ता है। वह चल पड़ी।

किन्तु गली का जैसे अन्त ही न था! उस छोटी सी गली के

भीतर तीन-चार गलियाँ और मिलीं।...जिस गली में वह थी, उसके दोनों ओर अधिकांश मुसलमानों की दूकानें थीं। अधिकतर बीड़ी और बिस्कुट की छोटी छोटी दूकानें।

बीड़ीवाले शोहदे इस 'परी' को देखकर मानो भूखी आँखों से खा जाना चाहते। एक कान छोकड़े ने कलेजे पर हाथ रखकर यह शेर पढ़ा :—

"इस सादगी पै कौन न मर जाए ऐ खुदा
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं!"

दूसरा लौंडा एक अजीब तरह की भाव-भंगिमा बनाकर बोला—

"मेहरबानी की एक राह तो हो
गर सताने के हैं हजार तरीक!"

उर्म्मिला उनकी कुत्सित हँसी सुनती और भयभीत होकर चारों ओर देखती। हाय, इधर तो कोई हिन्दू नजर नहीं आता!

एक सीधा-सादा दिखने-वाला व्यक्ति चबूतरे पर बैठा था। उर्म्मिला ने सोचा—यह आदमी भला मालूम पड़ता है। फिर भी सकुचाकर पूछा—"गरेड़िया मुहाल का रास्ता...?"

उस अफीमची-से दिखनेवाले व्यक्ति ने गौर से उर्म्मिला को देखा। देखकर कुछ सोचता रहा। बोला—"चलो, हम उसी तरफ चल रहे हैं...।"

उर्म्मिला सकपकाई किन्तु हिम्मत बाँधकर पीछे चल पड़ी।

गलियाँ जटिल होती गईं। एक के बाद दूसरी गली निकल

आती थी। धीरे-धीरे संध्या भी उमड़ आई। उर्म्मिला ने सहमकर पूछा—"मुझे कहाँ लिए जाते हो ?"

"डरती काहे हो ?...मुहल्ला अब नजदीक ही है।" कहकर वह एक मकान के पास आ खड़ा हुआ। गली का वह हिस्सा एकदम सन्नाटा था।

वह व्यक्ति वहीं खड़ा हो गया। फिर उर्म्मिला की ओर मुड़कर बोला—"इस घर में एक आदमी से मुझे कुछ कहना है। तुम दो मिनट ठहरो, अभी आता हूँ।"

उर्म्मिला उस अर्ध-अंधकार में किसी अज्ञात आशंका से सिहर...सिहर उठी। वह न बढ़ सकी; न पीछे हट सकी।

वह आदमी लौटा। साथ में एक तगड़ा और लुँगी पहने मुसलमान था। पहले व्यक्ति ने दूसरे के कान में फुसफुसाकर कहा—"होशियारी से...।"

और दूसरे ही क्षण उर्म्मिला के मुख पर एक दुर्गन्धयुक्त मैला कपड़ा था! वह चार बलिष्ट हाथों द्वारा टाँग ली गई थी। वह एक 'चीख' भर सकी और फिर तो उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया गया! उर्म्मिला प्रायः अचेत हो गई।

पहले व्यक्ति ने कहा—"देखो करीम, इसे ऐसी कोठरी में रक्खो जहाँ आफताब की रोशनी भी न पहुँचे। करारा माल है यार...!"

दोनों मकान के भीतर घुसे।

करीम ने अपनी खूँखार आँखें मटकाकर कहा—"बेफिक्र रहो

जहीद...अब यह सोने की चिड़िया हमारे पंजे से कहाँ जाती है ?" साथही उसने उर्म्मिला को एक अंधेरे कमरे की एक पुरानी खाट पर पटक दिया।

जहीद ने उर्म्मिला के मुँह का कपड़ा खींचकर कहा—"बेहोश नहीं है। योंही थोड़ा चक्कर आ गया है।" कह उर्म्मिला को भूखी आँखों से घूरता रहा।

तबतक करीम तेल की एक कुप्पी ले आया।

उर्म्मिला भी अब होश में आ गई थी। उसने अपने दोनों ओर के यमदूतों को देखा और हथेलियों में मुँह छिपा चीख उठी।

जहीद ने करीम के कान में फुसफुसाकर कहा—"तेल की कुप्पी या किसी तरह की ऐसी चीज यहाँ मत रखना...नहीं तो खुदकुशी कर सकती है। परसाल तुम्हारी बेवकूफी से एक हसीन लड़की ने जो किया....?"

"हाँ....हाँ मालूम है।" बीच में ही करीम बोल उठा—"लेकिन इन मामलों में मैं अब कच्चा नहीं हूँ, दोस्त!" करीम मुस्कुराया। वह मुस्कुराहट एक शैतान की थी।

जहीद ने आगे बढ़कर अपना पोपला मुख उर्म्मिला के कपोलों तक बढ़ाया।

करीम ने आँखों में शरारत भरकर कहा—"अभी ही दीवाने हो गये, म्याँ ?"

"हाँ यार, बला की खूबसूरत है!"

गन्दी साँस और काले जलते ओठों को अपने मुख के पास पाकर उर्म्मिला चीख उठी—"दूर हो कीड़े...मैं यहीं दीवार से सिर फोड़कर जान दे दूँगी...मुझे छोड़ दो...छोड़ दो...।"

करीम ने जहीद का हाथ खींचते हुए कहा—"अभी छोड़ दो। तैश में है। एकदिन हाथ में तो आएगी ही।"

दोनों बाहर निकल आए। ताला बन्द करते हुए करीम बोला—"अम्मी से पूरी रकम पर बेचूँगा यार!"

उर्म्मिला ने आँखें खोलकर देखा—अंधकार है—घोर अंधकार!

[तेरह]

बलवन्त में उसका पूर्व पौरुष जो आशा की प्राप्ति से पिघल रहा था, फिर एकाएक जम गया। उसकी आँखों में गंभीरता आई; वाणी में प्रखरता आई।

मिल के कर्मचारी, मैनेजर, सभी चकित हैं कि यह प्रोप्राइटर आखिर है क्या ?....सभी उसके आते ही जैसे त्रस्त हो पड़ते हैं।

घर वह बहुत रात बीते आता है। आता है और आकर चुपचाप अपने कमरे में सो लेता है। अधिकतर वह मोटर लेकर दूर-दूर निकल जाता है।

सिगरेट के कितने पैकेट दिन में स्वाहा हो जाते हैं। राख झाड़ते हुए वह बहुत-सी बातें सोचता है। सोचता है कि सोचने

ही लगता है। वह ऐसे 'सीरियस मूड' में रहता है मानो कोई बहुत ही पेचीदा—कोई अतिशय जटिल पहेली—सुलझा रहा है!

आशा से बलवन्त ने बोलना छोड़ दिया है। आशा ने एकबार आँखों में आँसू भरकर कहा—"आप ऐसे क्यों हुए जा रहे हैं?"

बलवन्त सिगरेट का आखिरी कश खींचकर बोला—"मुझे नींद आ रही है। सोने दो।"

आशा बैठी थी, बैठी ही रह गई।

दूसरी सुबह की बात है। आकाश मेघाच्छन्न था। बादल लहराते आ रहे थे। आशा खड़ी उन्हें ही एकटक देख रही थी।

बलवन्त उठकर सिगरेट का कश खींच रहा था। आशा बादलों की ओर देख रही है, यह देखकर बलवन्त ने व्यंग्य में कहा—"विरहिन को बादल बहुत भाते हैं, क्यों आशा?"

आशय समझकर आशा कुछ देर तक ठिठकी रही। फिर न जाने क्या सोचकर बोली—"हाँ।"

बलवन्त ऐसे उत्तर की आशा में न था। व्यंग्य में फिर बोला—"विरहिन चाहती है कि इन्हीं बादलों में बैठकर वह अपने प्रियतम के देश में चली जाय, क्यों आशा?"

"जी हाँ, वह चाहती है।"

बलवन्त ने एक अजीब तरह का ठहाका लगाया। यह अट्टहास आशा के कलेजे को छेद कर गया।

सिगरेट की राख झाड़कर वह बोला—"विरहिन जब विरह में हो, तो उसे बाधा नहीं पहुँचानी चाहिए....क्यों आशा ?"

"आपने ठीक ही कहा।" आशा का चेहरा तमतमा उठा। सिगरेट फेंककर बलवन्त चहलकदमी करता रहा।

आशा ने दृढ़ स्वर में कहा—"आप मेरा बार-बार क्यों अपमान कर रहे हैं ?"

"अपमान ?" बलवन्त ने रुककर कहा—"सब-जज की लड़की का कोई अपमान कर सकता है....यदि वह चाहे तो....।"

आशा का चेहरा लाल हो उठा।

बलवन्त मुट्ठी बाँध कर, कठोर स्वर में बोला—"आशा, तुमसे एक बाजारू औरत कहीं अच्छी है। वह किसी को धोखा तो नहीं देती.... किसी को भुलावे और भ्रम में तो नहीं रखती !"

हैट उठाकर बलवन्त तेजी से बाहर हो गया।

आशा पत्थर की मूर्ति हो रही !

उमड़ते बादलों पर उसकी दृष्टि थी। वह वहीं टिक रही। हृदय के भीतर कोई डंक मार गया...तो वह एक बाजारू औरत समझी गई है !...उसके नारीत्व का इतना घोर अपमान इस पुरुष ने किया है और वह इसी कारण कि वह एक 'पुरुष' है ! नारी को रुलाने का उसे चिरन्तन अधिकार है ! नारी उसके लिए एक उपभोग की वस्तु मात्र है !...आशा का मन विद्रोह करता गया...वह समर्पण की भावना रखती है। जिस आदमी को उसने 'देवता' समझ

रक्खा था, क्या वह 'पत्थर' ही निकला ? ...क्या यह उसकी भूल थी ?

हाय, क्या वह अपने को इस तरह अपमानित होती देखेगी ?....

वह इस युग की नारी है...बीसवीं सदी की नारी। वह एक ही ठोकर से इस पुरुष का सारा पौरुष चूर-चूर कर सकती है।...किन्तु हाय, अपनी शक्ति को भूलकर वह तो मात्र एक 'पुरातन नारी' का रूप लेकर आई थी।...इसका यह परिणाम हुआ !....उसे एक 'बाजारू औरत' से भी हेय समझा गया ?...

आशा का मन रोने-रोने को हो उठा।

....अविनाश !...

स्मृति फिर उभड़ आई। वह सचमुच विरहिन है। सचमुच ही वह उसे नहीं भुला सकेगी...नहीं भूल सकती !....एकदिन अपनी सारी समर्थता के साथ उसने अविनाश को चाहा है। वह कसक अब भी हृदय के स्तर को मथ डालती है।

उसने कहीं पत्र लिखना भी बन्द कर दिया है। उसदिन की घटना से वह इतनी क्षुब्ध है कि जी नहीं चाहता—कहीं भी वह पत्र भेजे !

और ऐसी ही अवस्था में उसने 'शक्ति' के अंक देखे।

बलवन्त की तिपाई पर वे अंक लापरवाही से पड़े थे।....पत्र पर अविनाश का नाम पाकर वह चिहुँक उठी। अंक बटोर लिए। कुल चार थे।

अग्रलेखों को देखा। संदेह जाता रहा।

वह कुछ सोचती रही। आखिरी अंक आज से तीन सप्ताह पहले निकाला गया था।

जगदेव को बुलाकर आशा ने पूछा—"पढ़ना जानता है रे?"

जगदेव चौदह-पन्द्रह वर्ष का फुर्तीला और वाचाल नौकर था।

तुरत बोला—"जानता हूँ बीबीजी....रामायण बाँच लेता हूँ।" एक रुपया निकाल, उसकी तलहथी पर रख, आशा बोली—"'शक्ति' एक अखबार है। इसका दफ्तर मॉल के पास है। दफ्तर में जाकर कहना कि चार अंक के बाद जितने अंक निकले हैं, दीजिए।"

जगदेव चला गया।

आशा उसके लौट आने की प्रतीक्षा में बैठी रही। हृदय के भीतर कुछ संघर्ष था।

बेहरे ने आकर पूछा—"मेम साहब, खाना लाऊँ?"

"नहीं...आज तबीअत ठीक नहीं।"

बेहरा लौट गया।

समय जैसे-जैसे बीतता था, आशा की आकुलता भी बढ़ती जाती थी। और जब मुँह लटकाए जगदेव वापस आया तो आशा का हृदय बैठ गया। पूछा—"क्यों रे, खाली क्यों लौटा?"

"बीबीजी, अखबार बन्द हो गया है।" लड़का कुछ दुखित था।

"बन्द हो गया है, किससे पूछा?"

"अखबार के दफ्तर ही में गया था बीबीजी। मैनेजर बोला,

अब अखबार नहीं निकलता। सिर्फ चार ही निकले। अब प्रेस में दूसरा काम होता है।"

आशा चुप हो गई। जगदेव रुपया देने आगे बढ़ रहा था।

अनमने भाव से आशा ने कहा—"जा, रुपया ले जा। मिठाई खाना।"

जगदेव सकपका रहा था। आशा ने एक फीकी हँसी हँसकर कहा—"ले जा रे, खड़ा मुँह क्या देखता है?"

लड़का खुशी-खुशी बाहर हो गया।

और आशा का मन फिर उड़ चला...कहाँ होगा वह अविनाश? ...वह क्या इसी शहर में है? फिर आया क्यों नहीं?...क्यों आने लगा वह?...सोचता होगा—मैंने उसे धोखा दिया!...हाय, वह भी तो मुझे ऊँची निगाह से नहीं देखता होगा। सोचता होगा—आशा ने उसके साथ यह अच्छा नाटक खेला!

मन व्यथा से भर गया। हृदय में कुछ उमड़ा...उमड़ता ही रहा।

[चौदह]

बलवन्त अपनी आराम-कुर्सी पर लेटा सिगरेट फूँक रहा था। फाइलों के ढेर लगे थे; किन्तु उसकी दृष्टि उन पर न थी। वह सिगरेट के स्प्रिंगदार धुएँ को, जो गोल होकर, चक्कर मारते हुए शून्य में उड़ जाते थे, एकटक देख रहा था। वह सोच रहा था—वह व्यर्थ की भावुकता में है। 'स्त्री' को गौरव प्रदानकर उसने भूल की है। यह सारी जाति ही खोखली है।...आशा ने उसकी धारणा पर एक ठेंस पहुँचाई है—गहरी चोट! और अब मन न जाने क्यों, प्रतिशोध चाहता है। आशा के आँसुओं को देखकर जी हल्का लगता है। वह आशा को रुलायगा, खूब रुलाएगा। आशा ने तो उसके जीवन के एक दृढ़ स्तंभ को तोड़ दिया है।....वह जब

किसी दूसरे के प्यार में तल्लीन थी, तो उसे इस नाटक को खेलने का क्यों शौक चर्राया ?....आशा अशिक्षिता नहीं है; कालेज के वातावरण में वह पल चुकी है। फिर उसने हिम्मत कर क्यों नहीं बलवन्त के पास पत्र लिखा—"मेरे हृदय में दूसरी मूर्ति स्थापित है। आप मुझसे ब्याह करने की गलती मत करें।"

यह पढ़कर उसे कितनी खुशी होती !....

और यह पर्दों का खेल !...आशा उसे नहीं चाहती। चाह सकती भी नहीं। एक बार जो फूल एक देवता पर चढ़ जाता है, वह दूसरे देवता की आराधना में भाग नहीं ले सकता !....वह तो जूठन है, अवशिष्ट...कुतरा हुआ ! बलवन्त जूटा नहीं खाता। अवशिष्ट को वह सदा फेंकने की वस्तु मानता है।

बलवन्त ने सिगरेट का आखिरी कश खींचा और फिर फाइलों की ओर झुका....फाइल....बँधे हुए ये असंख्य फाइल !....सिगनेचर करता गया।

और इतने में मैनेजर ने आकर पूछा—"भीतर आ सकता हूँ ?"

"आइए।" बिना सिर उठाए उसने उत्तर दिया।

मैनेजर आकर खड़ा हो गया।

"कुछ कहना है आपको ?"

"जी" कहकर मैनेजर ने एक कागज सामने रख दिया।

"यह क्या है ?" चौंककर बलवन्त ने पूछा।

"मजदूरों की ओर से यह भेजा गया है।"

बलवन्त ने फाइल छोड़ दिया। कागज को पढ़कर कुछ मिनटों तक सोचता रहा; फिर बोला—"तो इस मिल में भी यूनियन खुराफात मचाना चाहता है?" कुछ देर तक वह सोचने की मुद्रा में रहा। उसकी तीखी आवाज गूँज गई—"किन्तु मैं उन्हें देख लूँगा....उन्हें जानना चाहिए कि मैं बलवन्त हूँ!"

कुछ देर तक चुप्पी रही।

मैनेजर ने इस बार शान्ति भंग की—"तब क्या आज्ञा होती है?"

"आप क्या चाहते हैं?"

"कम-से-कम उनकी पहली दो माँगें....।"

"आप बात नहीं समझे!" बलवन्त बीच में ही गुर्राया—"सवाल यह नहीं है कि उनकी माँगें जायज हैं या नाजायज?....सवाल यह है, कि यह धमकी क्यों है?....क्या वे समझते हैं कि मैं उनके इस कागजी नुमाइश से डर जाऊँगा?...."

मैनेजर मौन रहा।

बलवन्त ने कुछ रुककर पूछा—"और ये हजरत कौन हैं?... वही 'शक्ति' के सम्पादक?"

"जी हाँ, आजकल प्रोफेसर हैं।" मैनेजर ने दबे स्वर में उत्तर दिया।

बलवन्त कुछ देरतक देखता रहा—मजदूर-यूनियन के प्रेसिडेन्ट —मिस्टर 'अविनाशचन्द्र' का नाम! उसकी भृकुटि तनी: माथे पर कुछ बल आया: फिर लापरवाही से बोला—"यह मजदूरों का

रहनुमा कब से बन बैठा ? मैंने तो समझा था कि उसकी सारी शक्ति 'शक्ति' ही तक सीमित है। 'शक्ति' के प्रोप्राइटर को हमलोगों ने मिलकर इतना दबाया कि सम्पादक को तो हटाना ही पड़ा, अखबार भी हमेशा के लिए बन्द करना पड़ा।"

मैनेजर कुछ उलझन में था। दबी आवाज में बोला—"पर एकबार आपको यूनियन के प्रेसिडेन्ट से मिलना चाहिए।"

"यूनियन के प्रेसिडेन्ट !" बलवन्त कुछ सोचता-सा लगा। वह जानता है कि गवर्नमेंट का ऑर्डर शीघ्र ही पूरा करना है। हड़ताल हो जाने से कम्पनी को काफी घाटा होगा...फिर भी बलवन्त की अपनी 'जिद' है।

शान्त स्वर में बलवन्त ने कहा—'हम यूनियन की तरफ से आई किसी माँग पर विचार नहीं कर सकते। यूनियन के प्रेसिडेन्ट से बातें करने का मुझे फिजूल समय नहीं है।"

मैनेजर स्वर सुनकर चौंक उठा। वह अपने प्रोप्राइटर को जानता है। जानता है कि उसका यह शान्त स्वर ही अन्तिम निश्चय है। वह इससे एक तिल भी पीछे नहीं हटता।

"तो जवाब दे दूँ ?"

"जरूर !" कहकर वह फिर फाइलों की ओर झुका। मैनेजर लौट गया। इसके बाद बलवन्त का मन नहीं लगा। आनेवाली किसी अज्ञात विपत्ति का उसे सामना करना है, यह बात चुभती रही।

फाइल छोड़ उसने सिगरेट सुलगाई। सुलगाई और पीता रहा। भाव चक्कर काटते रहे। उसका सुप्त पौरुष एकबार फिर उभड़ा...

बलवन्त संघर्ष से नहीं डरता। उसके पिता ने उसे संघर्षों के बीच खड़ा होना सिखलाया है। वह अपनी शक्ति को कुंठित नहीं होने देगा।....मजदूरों को 'उसके' पास आना चाहिए था। यूनियन में जाकर उन्होंने अपने प्रोप्राइटर का अपमान किया है। वह शक्त जरूर है : किन्तु किसी और मिल से उसके यहाँ मजदूरी कम नहीं दी जाती।...और फिर वह व्यवसायी है। कोई धर्मशाला खोल पुण्य लूटने नहीं बैठा है। आज की दुनिया में शोषण की नींव पर ही तो व्यवसाय और वाणिज्य है। वह दया करने को तैयार है, यदि उसके सहयोगी भी उसके पथ का अनुसरण करें। वह यह नहीं चाहता कि दया की भट्टी में उसका व्यवसाय पिघल जाय और अपने प्रतिद्वन्द्वियों से उसे नीचा देखना पड़े...सिगरेट का आखिरी कश उसने खींचा और फेंक दिया। फिर कमरे में चहलकदमी करता रहा।

सामने कम्पनी का कैलेंडर टँगा था, जो रह रहकर हवा में हिल उठता था। एक ओर 'लीडर' रक्खा था जिसके देखने पर यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि इसका अधिकारी इसे नहीं छू सका है। एक बड़ा शानदार फोटो सुन्दर फ्रेम में सामने टँगा हुआ था। यह मिल के संस्थापक—बलवन्त के पिता—की तस्वीर थी, जिन्होंने बहुत ही छोटी पूँजी से इस मिल का श्रीगणेश किया था। आज यह देश के प्रख्यात मिलों में से है! बलवन्त ने एकबार पिता की ओर देखा। थोड़ी देर तक देखता ही रहा। फिर हैट उठाकर कमरे से बाहर हो गया।

[पन्द्रह]

अविनाश प्रोफेसर है ; एक सम्मानित पद पर है; किन्तु वह अपने ध्येय से—अपने संकल्प से—एक तिल भी पीछे नहीं हटा है। समय निकालकर वह मजदूरों की बस्ती में जा ही मिलता है। आज-कल वह मजदूर-यूनियन का प्रेसिडेन्ट है; और इसलिए अपनी जिम्मेदारी का उसे ख्याल रखना पड़ता है। संध्या को वह पार्क की ओर न जाकर, मजदूरों की उन गन्दी गलियों में जाता है, जहाँ 'मानव' के रूप में 'कीड़े' बसते हैं। उसे अनेक हृदय-विदारक दृश्य देखने को मिलते हैं ; और उन लोमहर्षक—अकल्पनीय दृश्यों को देखकर अविनाश की मनुष्यता मानो चीख उठती है। एक दृश्य अब भी उसकी आँखों के सम्मुख मानो नाच रहा है :—

वह एक गन्दी और छोटी कोठरी के सामने भीड़ देखकर जा खड़ा हुआ। वहाँ एक लाश पड़ी थी—विकृत अवस्था में। लाश पर पूरा कपड़ा नहीं था। वह एक युवती की लाश थी—ऐसी युवती की, जो संभवतः उन्नीस-बीस की हो। उसकी टाँगें नंगी थीं और सिर खुला था। वक्षस्थल का अधिक भाग प्रायः नंगा ही था।

"क्या बात है भाई ?" उसने एक मजदूर से पूछा।

मजदूर ने अविनाश को पहचानकर कहा—"बाबूजी, इसे बच्चा होनेवाला था। मर गई !"

अविनाश चुप रहा।

वह मजदूर कहता गया—"इसका आदमी तो आज एक महीने से बीमार है। वह देखिए न, घर के भीतर जमीन पर बेहोश है। एक महीने की बीमारी और यह मँहगी !...दवा हमलोग खैराती अस्पताल से कभी ला देते थे। पहले कुछ पैसे चन्दाकर हमलोग इस लड़की को जिन्दा रख सके। पर यह कबतक हो सकता था बाबूजी ?...खैराती अस्पताल की भीड़ में घंटों खड़े रहने पर कभी दवा मिलती, कभी वापस, खाली हाथ ही लौटना पड़ता।...घर में तो एक कानी कौड़ी भी नहीं...और आज सुबह से ही बेचारी को जो दर्द शुरु हुआ तो इसे मार कर ही छोड़ा !"

अविनाश एकटक लाश को देखता रहा। युवती का विकृत मुख डरावना लग रहा था। संभव हो, पहले यह देखने में अच्छी रही हो!

"बाबूजी...अब कफन, बाँस...लकड़ी का इन्तजाम करना है।

उसीके लिए हम खड़े हैं। बाबूजी, आजकल कफन का कपड़ा भी कितना मँहगा हो गया है!" कहकर वह मजदूर एक अजीब ढंग से मुस्कुराया जो निस्सन्देह खुशी की मुस्कुराहट न थी। वह मुस्कुराया और बोला—"और बाबूजी, यह कितने अचरज की बात है कि जो कफन का कपड़ा तैयार करें, उन्हें ही मरने पर कफन न मिले!"

अविनाश का सारा शरीर सिहर उठा। जेब में हाथ डाल कर देखा—दो रुपये और कुछ पैसे थे। उन्हें मजदूर के हाथ में देकर बोला—'इस तरह लाश को नंगी मत रक्खो। जाओ, कफन खरीद लो।"

और फिर अविनाश वहाँ से इस तेजी से जाने लगा, मानो यह हवा उसका दम घुटा देगी!

बहुत देर तक लाश की विकृत आकृति आँखों के आगे नाचती रही। वह उस दृश्य को भूलना चाहता था। वह नग्न दृश्य उसे पीड़ा दे रहा था....।

....यही तो आज की सभ्यता में बर्बरता का नग्न स्वरूप है। मनुष्य दवा के अभाव में तड़प-तड़पकर जान देता है: और आज की सभ्यता बड़ी गंभीरता और बुजुर्गी से सिर हिला-हिलाकर हमें यह बताती है—हम आदिम और पत्थर के युग को बहुत पीछे छोड़ आए हैं। हम भूतल के सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं। साहित्य, राजनीति, दर्शन, चिकित्सा, विज्ञान, मनोविज्ञान आज जिस गौरव के पद पर हैं, विश्व के इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण आपको ढूँढ़े न

मिलेगा। हमने अपनी अनुभूतियों को विस्तृत किया है। हमने अपने प्राचीन संस्कारों में क्रान्ति मचाई है। हम युग को बदलने वाले हैं। हम सभ्य हैं।

...और वह अधनंगी लाश...नंगी टाँगे...खुला वक्षस्थल... निकला हुआ पेट !...

यह अधनंगी लाश मानो आज की सभ्यता की छाती पर चढ़ कर अट्टहास कर उठती है। मानो वह कह रही है:—'अरी ओ सभ्यता ! तू तो वेश्या है, वेश्या !....तेरे भीतर है ही क्या ?...तेरे ऊपरी रूप पर ही विश्व मुग्ध है। तेरे कृत्रिम सौंदर्य्य पर ही यह संसार अपने को सौभाग्यशाली मान रहा है। पर तू है आखिर वेश्या ! तेरे भीतर 'आभा' और 'पवित्रता' कहाँ है ?.... तेरे भीतर तो वेश्या की वही गंदगी है—उपदंश के कीटाणु !...तू संसार के अन्तर को कुष्ट की तरह गला रही है। संसार अपनी कुरूपता का—अपनी कुष्ठता का—अनुभव कर भी, उस पर आवरण दे रहा है ! आवरण दे रहा है जिससे किसीकी आँखें उस गंदगी—उस फोड़े के बहाव को न देख सकें !

अविनाश ठिठक गया। पार्क की बेंच खाली पड़ी थी। उसने आँखें बन्द करलीं और साथ ही एक दूसरा दृश्य आया...

मजदूरों की ही बस्ती। एक फेरीवाला है—काला-कलूटा, जैसे अक्सर फेरीवाले रहा करते हैं। मैले खोमचे में तेल की निमकियाँ हैं....बासी मूँगफली है। वह अपनी भर्राई आवाज को फैलाकर कहता है—"ताजी निमकियाँ...ताजी मूँगफली...!"

एक छोटी सोल-भरी कोठरी से एक सात-आठ वर्ष का लड़का बाहर होता है। नंग-धड़ंग। पतली टाँगें हैं जिस पर सिर ऐसा मालूम होता है, मानो किसी लकड़ी पर कोई भारी गोल चीज रख दी गई हो!

लड़का घिघियाकर कहता है—"एक पैसा मेय्या, निमकियाँ...!"

"चल, दूर हट!" माँ उसे झिड़क देती है। उसकी गोद में एक पिल्ली सी लड़की भी है जो गला फाड़-फाड़कर रो रही है। दो छोटे लड़के और हैं जो पास की गन्दी नाली से कीचड़ उठाकर एक दूसरे पर फेंककर खुशी का अनुभव कर रहे हैं। फेरीवाले की आवाजें सुनकर वे भी काले कीचड़ लगे हाथों से माँ की पेवन्द लगी मैली साड़ी का आँचल पकड़ कहते हैं—"एक पैसा मेय्या!....एक पैसा!"

पहला लड़का झिड़की खाकर अपने दोनों भाइयों के साथ आ मिला है।

"एक पैसा दो न मैया...पैर पड़ता हूँ।" कहकर एक लड़का पैरों की ओर झुकता है।

"हट....हट...अभागे..." कहकर माँ पैर से ठेल देती है।

तबतक दूसरा लड़का माँ की साड़ी का आँचल पकड़ खींच लेता है—"दो न मैय्या...काहे नहीं देती?"

माँ का चिड़चिड़ा मन इन लड़कों के उत्पात से और भी तीखा हो उठता है। तड़-तड़ कर दो-चार तमाचे सब को जड़ देती है!...

अविनाश खड़ा होकर सब देख रहा था। पास आकर बोला—"बच्चों को इसतरह क्यों मारती हो ?"

"नहीं मारूँ तो और क्या करूँ ?...कहाँ से इनके लिए तोड़े लाऊँ ?....अभागों को मौत भी नहीं आती...!" और उन रोते बच्चों को वह और भी पीटती रही। वे अभागे लड़के एक विचित्र स्वर में सुर मिलाकर एक साथ 'कोरस' की तरह चिल्ला कर रोने लगे !

अविनाश की भावुकता उभर आई। अपनी पाकिट से एक चवन्नी निकालकर बच्चों की ओर बढ़ाया।

"रक्खो अपने पैसे ! आए बड़े दयावाले !....पैसे देकर और उनकी जीभ बिगाड़कर, मैं कल कहाँ से लाऊँगी ?....कल जब यह पैसे के लिए चोरी करेगा तो तुम्हीं सबसे पहले उसे जेल में भेजोगे !"... और वह तेजी से अपने बच्चों को घसीटकर कोठरी में ले चली।

अविनाश उत्तर सुनकर सहम गया। स्त्री की तीखी आँखें उसे चुभती-सी लगीं। वह धीरे-धीरे बढ़ गया; किन्तु, साथ ही, बच्चों की कर्कश रुलाहट उसके कानों से टकराती रही...।

और यह रुलाहट अब भी अविनाश महसूस कर रहा है। आँखें बन्द करने के साथ ही दृश्य नाच उठते हैं।...आज की यह विकसित सभ्यता एक बच्चे को एक पैसे की बासी निमकियों के लिए रुला जाती है !

पार्क से बाहर निकलकर वह चलता गया। घर पहुँचनेपर पाया—यूनियन के कुछ कार्यकर्त्ता उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अविनाश ने खड़े-खड़े पूछा—"तो 'कमला-काटन-मिल्स' के प्रोप्राइटर ने क्या उत्तर दिया ?"

"खबर निराशाजनक है।" कहकर चन्द्रशेखर तमतमा उठा।

चन्द्रशेखर यूनियन का एक उत्साही और कर्मठ कार्यकर्त्ता है। वह 'कमला काटन मिल्स' का कर्मचारी भी है।

"उन्होंने कुछ भी जवाब नहीं दिया ?"

"यूनियन की माँगों पर विचार करने को उन्हें समय नहीं है।"

अविनाश पास की कुर्सी पर बैठ गया।

चन्द्रशेखर ने आवेश में कहा—"हमें हड़ताल करनी ही होगी। वे हमारी माँगों पर विचार तक करने को तैयार नहीं हैं!"

अविनाश गंभीर मूड में था। आहिस्ते बोला—"हमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। हमारे देश में हड़ताल से मजदूर ही तबाह होते हैं। उन्हें ही भूखा रहना पड़ता है।"

"तो क्या हम घुटने टेक दें ?" चन्द्रशेखर उद्विग्न होकर बोला।

"यह कौन कहता है ?...किन्तु हड़ताल आखिरी हालत में होनी चाहिए। मैं एकबार खुद उनसे मिलूँगा।"

"आपको क्या यह आशा है कि वे मान जायँगे ?"

अविनाश ने शान्त स्वर में जवाब दिया—"किन्तु हमें अपना कर्त्तव्य तो करना ही चाहिए।"

चन्द्रशेखर चुप हो गया।

"कल मैं उनसे मिलूँगा। सारी कठिनाइयाँ पेश कर दूँगा। वे पढ़े-लिखे और नवयुवक हैं। मैं आशा नहीं हार बैठा हूँ।"

कुछ क्षणोंतक सभी मौन रहे ; फिर कार्यकर्त्ताओं के साथ चन्द्रशेखर लौट गया।

बहुत देर तक अविनाश सोचता रहा। संध्या घनीभूत हो उठी। नौकर आकर स्विच जला गया। चाय प्याली में पड़ी रह गई। अविनाश कुछ दूर की दुनिया में उलझा ही रहा।

अविनाश को मालूम है कि वह अपनी दुर्बलता छिपाने के लिए अपने को इतना उलझाये रखता है। वह यह भी जानता है कि आशा उससे बहुत ही कम दूरी पर है। उससे यह बात भी छिपी नहीं है कि 'कमला-काटन-मिल्स' का प्रोप्राइटर ही आशा का स्वामी है। 'ओरिएन्ट' में छपे उस चित्र के परिचय को क्या वह भूल सका है ?...

रजनी की निस्तब्ध घड़ी में, जब दुनिया की उलझनों से थककर अविनाश सोने की चेष्टा करता है, तो आशा की मंजुल मूर्ति आ खड़ी होती है। वह देरतक उलझनों में उलझकर मीठी पीर पाता है।

कई बार आशा से मिलने की प्रबल उत्कंठा जाग गई है ; किन्तु अविनाश मनोविज्ञान की साधारण बातें जानता है। वह यह भी जानता है कि आशा से मिलकर वह सुख का अनुभव नहीं करेगा। मिलने के बाद जो पीड़ा होगी, वह उसकी प्रगति के पथ को अवरुद्ध कर देगी। अविनाश अपने को कमजोर और असमर्थ पाता है। वह आशा को देखकर क्या अपनी दबाई भावनाएँ रोक सकेगा ?... और ये दबी भावनाएँ जब उभड़ेंगी तो अविनाश क्या अपनी प्रकृति को स्वस्थ रख सकेगा ?....अविनाश अपने को कापुरुष नहीं बनाना

चाहता। संसार में बहुत से अभाव है; बहुत-सी समस्याएँ हैं। वह अस्वस्थ होने की अपेक्षा इन समस्याओं में ही अपने को मिटा डालना अच्छा समझता है।

वह आशा के पति से मिलेगा—मजदूरों के प्रतिनिधि के रूप में। उन्हें बतलायगा—ये अभागे मजदूर आपके दया के पात्र हैं। इन पर दया कीजिए; रहम दिखलाइए। इनके भूखे पेट में थोड़ा अन्न जाने दीजिए।

वह 'दया' की भीख इनके लिए माँगेगा। यद्यपि अविनाश जानता है कि इनपर 'दया' करना, इनका अपमान करना है। दया असहायों और कमजोरों पर की जाती है। इन मजदूरों पर ही तो पूंजीवाद की आलीशान इमारत है। ये मजदूर अभागे हैं; अनजान हैं। इन्हें अपनी शक्ति और गति का ध्यान नहीं। इनकी अंगड़ाई से तो भूचाल आ सकता है। इनकी एक करवट से यह गगनस्पर्शी, आलीशान इमारत, धूल में खो जा सकती है!

अविनाश उठ खड़ा हुआ। इन बातों के लिए अभी जमीन बंजर है। वह इनके लिए सिर्फ 'दया की भीख' ही माँगेगा; हृदय पिघलाकर कुछ दान चाहेगा।

अविनाश ने उठकर खिड़की खोल दी। हवा का शीतल झोंका आया और उसे थोड़ी स्फूर्ति दे गया।

[सोलह]

दूसरे दिन कॉलेज से लौटकर अविनाश प्रोप्राइटर से मिलने चला। रास्ते में बहुत-सी बातें सोचता रहा। वह प्रोप्राइटर से ही नहीं मिलने जा रहा है ; बल्कि, उसके साथ आशा के पति की 'संज्ञा' भी है। मन चंचल था।

पहुँचने पर मैनेजर से मालूम हुआ—वे अभी-अभी मोटर से घर गए हैं।

मैनेजर परिस्थिति समझ रहा था। वह जान रहा था कि हड़ताल कम्पनी के लिए खतरनाक साबित होगी। वह चाहता था कि उसका प्रोप्राइटर किसी समझौते पर आ जाय। मैनेजर इस हड़ताल से होनेवाले नुकसान की मोटी रकम भी देख रहा था।

उसने अविनाश से कहा—"प्रोप्राइटर से घर पर ही मिलने में अधिक अच्छा होगा। यहाँ आने पर उनका 'मूड' सीरियस हो जाता है।"

अविनाश विचित्र उलझन में पड़ा।

मैनेजर ने प्रोप्राइटर के घर का पता बतलाते हुए कहा—"मुझे आशा है कि आप कोई समझौता निकाल लेंगे।"

अविनाश के मन में आया—वह कह दे, वह नहीं जायगा। किन्तु साथ ही हड़ताल और उससे होनेवाली मुसीबतें आँखों के सम्मुख नाच उठीं।....बेकारी और भूख!...असंतोष...मजदूरों में फूट...हड़ताल की असफलता! अधिकतर हड़तालों को उसने इसी भाँति समाप्त होते देखा है।....

फलतः, वह अपनी थोड़ी दुर्बलता को दूरकर, प्रोप्राइटर के घर पर ही, मजदूरों के लिए कुछ 'दया की भीख' माँगेगा।

सन्ध्या होने में अभी काफी देर थी। सूरज अभी भी नहीं डूबा था। उसकी किरणें अब कुछ शीतल हो चली थीं। और ऐसे ही समय में अविनाश प्रोप्राइटर के बँगले का फाटक पार कर रहा था।

किन्तु जो आशंका मन को बेचैन किए थी, वही सत्य होकर रही।

सामने ही रेलिङ्ग के सहारे आशा खड़ी थी। आँखें चार हुईं। आँखों में ही सारा सामर्थ्य भरकर एक ने दूसरे को देखा।

"अविनाश!" आशा के मुँह से एक चीख निकल गई। अविनाश के कदम रुक गये। आशा चुम्बक की तरह खिंच आई।

"अविनाश...!" आशा ने फिर कहा।

अविनाश का चेहरा पीला पड़ गया। आशा को सामने देखकर उसकी आँखें जाने क्यों बहुत रोकने पर भी डबडबा ही आईं।

आशा भी इस बार अपने को न रोक सकी। हृदय का बाँध टूट ही गया। आँसू कपोलों पर चू पड़े।

किन्तु अविनाश पुरुष है। छिः, वह क्या रोने के लिए यहाँ आया है? अर्थशास्त्र का यह गंभीर विद्वान क्या अपनी भावुकता में पिघल जायगा?

आशा ने अविनाश का हाथ झकझोरकर कातर स्वर में कहा—"अविनाश, तुम चुप क्यों हो? बोलो...मेरा गलाघोंट दो...मैंने तुम्हें धोखा दिया है...मैंने तुम्हारा सर्वनाश किया है.... मैं पापिन हूँ....मार डालने के लायक हूँ!"

आहिस्ते आशा के हाथ से अपना हाथ छुड़ा अविनाश ने जी कड़ाकर कहा—"माफ करो आशा, मैं दूसरे काम से यहाँ आया हूँ। प्रोप्राइटर कहाँ हैं, कह सकोगी?"

स्वर में अविचलित धैर्य्य है। आशा का चेहरा एकबारगी पाण्डु वर्ण का हो गया। वह और कुछ न कह सकी। एकटक अविनाश को देखती रह गई।

और इसी क्षण फाटक पर एक मोटर आकर रुकी।

बलवन्त ने फाटक के भीतर पैर रखकर जो देखा—तो ठिठक गया ! आशा की आँखों में आँसू थे। सिर का आँचल गिरा हुआ था। चेहरे पर उदासी की इतनी घनी छाया थी मानो कोई भारी दुर्घटना हो गई हो।

बलवन्त ने एक कड़ी दृष्टि से अविनाश को घूरकर कहा—"शायद आप अविनाशचन्द्र हैं ?"

"जी...।" कहकर अविनाश बलवन्त की ओर बढ़ आया।

"आपही 'शक्ति' के सम्पादक बनकर आए थे ?"

"जी, हाँ।" उत्तर में नम्रता थी।

"और अब, मेरे मिल के मजदूरों को बहकाने पर तुले हैं।" बलवन्त गुर्राया।

"बहकाने पर ?" अविनाश आश्चर्य्य में था।

"और इलाहाबाद से यहाँ 'रोमाँस' ढूँढ़ने चले आए हैं....?" गुर्राहट तेज हो गई।

अविनाश चकित रह गया।

इसबार बलवन्त ने आशा पर एक कड़ी दृष्टि फेंक कर कहा—"आशा देवी, मुझे माफ करेंगी। मैंने आकर आपलोगों के बीच बाधा पहुँचाई।"

बलवन्त मुड़ा और मोटर पर जाकर बैठ गया। चिल्लाकर बोला—"ड्राइवर, क्लब।"

तब संध्या की हल्की छाया पृथ्वी पर उतर रही थी।

अविनाश लौटा, और लौटा, एक विचित्र उलझन लेकर। आशा ने फिर एक शब्द नहीं कहा : वह ज्यों की त्यों खड़ी रह गई। अविनाश ने भी मुड़कर नहीं देखा। देखने की इच्छा भी नहीं हुई।

उसके हृदय पर न जाने एक कैसा बोझ पड़ गया! वह ऐसी स्थिति में पड़ जायगा, इसकी कल्पना भी उसने न की थी...वह रोमाँस ढूढ़ने इलाहाबाद से यहाँ आया है .... मजदूरों को उभाड़ना चाहता है!...हृदय की गुत्थियाँ और भी जटिल होती गईं।

डेरे पर पहुँचकर देखा, यूनियन के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं के साथ चन्द्रशेखर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

चन्द्रशेखर ने पूछा—"क्या नतीजा निकला ?"

अविनाश कुर्सी पर बैठ, तलहथी पर सिर रक्खे कुछ सोचता रहा! बोला—"कुछ नहीं....।"

"यह मैं जानता था...आज हमलोगों को मिल से निकाल दिया गया।"

"निकाल दिया गया! क्यों ?"

प्रोप्राइटर ने मुझे बुलाकर कहा—"तुम यूनियन में काम करके मेरी प्रतिष्ठा पर धब्बा लगा रहे हो....तुम और यूनियन से संबंध रखने वाले सत्रह मजदूर आज बर्खास्त किए जाते हो।"

अविनाश सोचता ही रहा।

चन्द्रशेखर जोश में भरकर बोला—"यह अन्याय हम कभी नहीं सहेंगे...हम कल से ही हड़ताल शुरू...।"

"ठहरो।" अविनाश ने रोककर कहा—"इतनी उतावली करने की जरूरत नहीं है। पहले एक अल्टिमेटम देना चाहिए कि अपनी माँगों का जवाब हम एक सप्ताह के भीतर चाहते हैं। हम चाहते हैं कि मिल के अधिकारी हमारी बातों को सुन लें...।"

चन्द्रशेखर ने झल्लाकर कहा—"आपकी यह बड़ी 'कोल्ड पालिशी' है। हम कल से ही चाहते थे...!"

अविनाश ने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया

लोग उठकर खिन्न भाव-से लौट गए।

दूसरे दिन प्रोप्राइटर को मैनेजर द्वारा मजदूरों का भेजा अल्टिमेटम मिला। मुट्ठी को टेबुल पर पटककर वह गुर्राया—"मैनेजर, जवाब अभी दीजिए कि इन बेहूदी बातों के लिए प्रोप्राइटर को समय नहीं है...।"

और यह कहकर उसने सिगरेट का शेष अंश अपने बूट के तल्ले से कसकर रगड़ दिया।

अल्टिमेटम का जवाब लेकर चन्द्रशेखर लाल मुँह किए आया। बोला—"आप बार-बार यूनियन को क्यों अपमानित कराते हैं? जो बात जानी हुई थी उसके लिए...।"

कागज के उस टुकड़े को पढ़कर अविनाश का चेहरा गंभीर होता गया।

चन्द्रशेखर ने पूछा—"अब क्या रास्ता है?...कल से हड़ताल...?"

"नहीं।" शान्त स्वर में अविनाश ने कहा—"कल एक मीटिङ्ग होनी चाहिए। मजदूरों को सभी बातें समझा दी जाँय...अगर वे हड़ताल के पक्ष में होंगे तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

चन्द्रशेखर खीझकर कुछ कहने जा रहा था कि अविनाश ने रोककर कहा—"कल रविवार है। मीटिङ्ग तीन बजे होगी।"

और इसके बाद यह सूचना कुछ ही देर में मजदूरों के बीच बिजली की तरह फैल गई।

दूसरे दिन तीन बजे सभा-स्थल में 'कमला-काटन मिल्स' के मजदूरों का जमघट लगा। हजारों की संख्या में वे मजदूर मानो उमड़ आये। काले, क्षीणकाय, जीवन-युद्ध से निराश, वे मजदूर आज कुछ निश्चय करने पर तुले थे।

अविनाश उठा। चेहरे पर शान्ति थी, किन्तु वाणी में ओज था। सीधी भाषा में उसने कहा—"साथियो! आज जिस बात पर हम विचार करने इकट्ठे हुए हैं, वह आसान नहीं है। इसपर आपको अच्छी तरह सोचना है।...बात यह है कि आपके लिए यूनियन की ओर से जो माँगें रक्खी गई थीं, उनपर विचार तक करने को आपके प्रोप्राइटर के पास समय नहीं है। हम उनसे अधिक नहीं माँगते थे। हम चाहते थे कि आपकी मजदूरी थोड़ी बढ़े। इस मँहगी ने मजदूरों को तबाह कर दिया है। मँहगी से जो फायदा उठाया जा रहा है, उस फायदे में थोड़ा हिस्सा आपको भी मिलना वाजिब है। हम चाहते थे कि बीमारी में थोड़ी दवा आपको भी मिलनी चाहिए।

हम चाहते थे कि आपके जो बच्चे इधर-उधर गंदी नालियों से खेला करते हैं, कुछ पढ़-लिख लें। हम चाहते थे कि आपकी कोठरी भी कुछ हवादार रहे...

साथियो, हमारी माँगें बहुत वाजिब थीं। किन्तु प्रोप्राइटर आपकी बात सुनना भी नहीं चाहते। ...मजदूर-यूनियन आपलोगों ने ही बनाया है। आपलोगों ने ही मुझे यूनियन का सभापति चुना है। आपके प्रोप्राइटर यूनियन को भी मानने को तैयार नहीं हैं।... अब सवाल यह है कि आप क्या करें?...इसतरह आपकी माँगें कबतक ठुकराई जाती रहेंगी? आप कबतक कफन के पैसों के लिए तड़पते रहेंगे?...आज उसी बात को सोचने का समय आया है। आप क्या करना चाहते हैं?"

मजदूरों की सम्मिलित आवाज गूँजी—"हड़ताल! हड़ताल!! हम हड़ताल करेंगे!"

एक ने चिल्लाकर कहा—"प्रोप्राइटर हमारा खून चूसता है!"

दूसरे मजदूर की आवाज आई—"हम अपना हक लेकर छोड़ेंगे!"

कुछ लोगों ने नारा लगाया—"पूँजीवाद नाश हो!"

सबको शान्त रहने का निर्देश कर, अविनाश ने फिर कहना शुरू किया—"भाइयो! हड़ताल एक अच्छी चीज है; और इसीके जरिए मजदूर अपने मालिक से अपना हक ले सकता है। दुनिया में आज हड़ताल ही मजदूरों के लिए सहारा रह गया है। किन्तु साथही हम

आपको यह आगाह कर देना चाहते हैं कि हड़ताल सभी लोगों के मेल से होती है। यदि आप आपस ही में फूट जाँयगे तो फिर आप और भी कुचल दिए जायेंगे। ...दूसरी बात यह है कि हड़ताल से होने वाली मुसीबतों का सामना आपको हर हालत में करना होगा। हो सकता है कि हड़ताल अधिक दिनों तक चले ; और उस हालत में आपकी हालत खूब ही बदतर हो जाय...आपके घर में अनाज का एक दाना भी न रहे...ऐसी मुसीबतें आपको सहनी पड़ सकती हैं, यह आप न भूलें। हो सकता है आपके प्रोप्राइटर जल्दी न झुकें... इसलिए, भाइयो ! आप सभी एकमत होकर कोई काम करें। यदि आप एक हैं तो दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत भी आपकी माँग पर झुकेगी...।"

"हम एक हैं...हम हड़ताल जरूर करेंगे।" कुछ चिल्लाए।

चन्द्रशेखर चिल्लाकर बोला—"भाइयो, हम ज्यादती नहीं सहेंगे...हम वीर की तरह डटकर सामना करेंगे।"

मजदूर एकबार फिर चिल्लाए—"हड़ताल ! हड़ताल....हम बहुत सह चुके !"

अविनाश ने शान्त स्वर में पूछा—"आप सभी तैयार हैं ?"

"हाँ, हम सभी तैयार हैं !" सम्मिलित आवाज हवा में थर्रा उठी।

× × × ×

आज सोमवार था—हड़ताल का दिन। मजदूर जोश में भरे

हले दिन हड़ताल पूर्णरूप से संगठित रही। मिल का काम बन्द
या।

नेजर ने सिर झुकाकर कहा,—"हालत गंभीर है। हम समझते
छ ही लोग काम पर नहीं आयेंगे...किन्तु मजदूरों में से एक
हीं आया....क्लर्क और आफिस के नौकर ही आए हैं...।"

लवन्त सिगरेट फूँक रहा था। फूँकता ही रहा। बोला—"हम
। जमींदारी से नए मजदूर बुलायेंगे....।"

नेजर प्रोप्राइटर के शान्त स्वर से चौंका। वह जानता है कि
प्रोप्राइटर जो बात आहिस्ते और सीधे ढँग से कहता है, उसे
ना मुश्किल हो जाता है!

नेजर ने दबी आवाज में कहा—"गवर्नमेंट का ऑर्डर इसी
के भीतर सप्लाई करना है।"

'यह मुझे मालूम है।" कहकर बलवन्त ने इस लापरवाही से
फेंका मानो यह एक अदनी-सी बात हो!

नेजर चुप रह गया।

ूसरे दिन देखा गया कि नए मजदूर मिल के फाटक की ओर
े हैं।

ुराने मजदूर स्तंभित रह गए। अविनाश के पास जाकर
—"अब क्या करें?"

'शान्तिपूर्वक पिकेटिङ्ग।" अविनाश का सहज उत्तर था।
मजदूर चिल्लाए—"पूँजीवाद नाश हो!"

नए मजदूर आगे बढ़े।

अविनाश ने आगे बढ़कर कहा—"भाइयो!...आपलोगों की भी यही दशा होगी जो आज इनकी हुई है। क्या आप अपने भाइयों की छाती पर चढ़कर काम करने जायेंगे?...क्या आप दूसरों का कौर छीनकर उनके बच्चों को भूखों मार देंगे?"

नए मजदूर हिचकिचाए। संभवतः उन पर कुछ असर पड़ा हो!

और इसी समय बलवन्त निकला। हाथ में हंटर, बगल में पिस्तौल। साथ में कई दर्जन पुलिस। उसकी आँखें लाल थीं; सिर के बाल छितराये थे। उसके चेहरे पर चिड़चिड़ाहट की स्पष्ट रेखाएँ थीं।

उसने गरजकर कहा—"उन्हें आने दो, रास्ता छोड़ो।"

थोड़ी देर तक सन्नाटा छा गया। बलवन्त गरजा—"मैं कहता हूँ, इन्हें आने दो!"

अविनाश ने शान्त स्वर में नए मजदूरों से कहा—"साथियो, हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि भीतर मत जाँय।"

नए मजदूरों में से एक काले व्यक्ति ने अपनी विकृत आवाज में कहा—"हम बुलाकर लाए गए हैं। पेशगी ले चुके हैं। हम जायँगे ही।"

नए मजदूर आगे बढ़े। अविनाश हाथ जोड़कर उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ। बोला—"भाइयो! आप अपने ही आदमियों का गला घोंट रहे हैं!"

"हम यह सब नहीं जानते!" कुछ मजदूरों ने अविनाश को

धक्का दिया—"हमें भीतर जाने दो!" उस मजबूत धक्के से अविनाश लड़खड़ाकर जरा झुक गया।

नए मजदूर बढ़े; पुराने मजदूर फाटक छेके खड़े रहे। नए मजदूरों में से एक ने किसी पुराने मजदूर को एक घूँसा मारा। पुराना मजदूर अहिंसा का पाठ भूलकर उसका एक जबरदस्त जवाब दे गया। गुत्थमगुत्थी शुरू हो गई।

अविनाश चिल्लाकर बोला—"भाइयो, शान्त हो। चुपचाप हट जाओ।"

किन्तु उसकी चिल्लाहट उस कोलाहल में सागर की एक तरंग थी।

स्थिति विकट होती गई।

बलवन्त कुछ देर तक यह दृश्य देखता रहा। फिर उसने पुलिस-सुपरिन्टेनडेंट को कुछ इशारा किया।

सुपरिन्टेनडेंट ने ऑर्डर दिया—"लाठीचार्ज!"

भगदड़ मच गई। लाठी-चार्ज होने लगी। एक सिपाही की मजबूत लाठी अविनाश के सिर पर पड़ी। खून का फव्वारा निकला। एक 'आह' ले वह जमीन पर गिर पड़ा।

कुछ ही क्षणों में घायल व्यक्तियों को छोड़, और वहाँ कोई न रह गया था। नए मजदूर गेट के भीतर गए ही।

और अब अविनाश अपने साथियों के साथ हास्पिटल में है। चोट पूरी लगी है। कई घंटे वह बेहोश रहा। अब भी वह अचेत है। डाक्टरों ने हालत खतरनाक बतलाई है। जब कभी

अधखुली आँखें हास्पिटल की उजली दीवारों पर पड़ती हैं तो अविनाश कुछ समझना चाहता है....कुछ समझता भी है।

दर्द बहुत है। करवट नहीं बदली जाती। सिर के साथ-साथ पीठ और कमर पर भी चोट आई है। पीड़ा असह्य है।

अविनाश कभी-कभी सोच उठता है—'इसकी उसे जरूरत थी।' आज थोड़ा खून देकर अपने को वह कुछ 'हल्का' पाता है!

[सत्रह]

मन की व्यथा है जो उभड़कर बड़ी तकलीफ दे जाती है ! प्राणों की यह पीर क्या आशा को शान्त रहने देती है ? आकुल मन बंधन तोड़कर फूट पड़ना चाहता है; किन्तु हाय, वह तो असमर्थ है ! हिन्दू-नारी का संस्कार क्या कभी विद्रोह करना जानता है ?....आशा शान्त और निर्विकार रूप से सभी सुन लेती है—सभी सह जाती है !

और यह बलवन्त है, जो संभवतः अपने सारे पुरुषार्थ को नग्न रूप से खोल दिखलाता है। उसके हृदय-रूपी पत्थर से, कुछ क्षणों के लिए, निर्झर का एक श्रोत फूटा था। किन्तु पत्थर को अपनी कोमलता असह्य प्रतीत हुई। वह अपने ही रूप में अपने

को स्वस्थ पाता था। वह तंतु जो अतीव कोमल थी, पत्थर के बोझ को न सँभाल सकी। भूमि अभी पूरी गीली भी न हो पाई थी कि मरुभूमि का उत्तप्त बवंडर उठा और सारी भूमि को और भी तप्त कर गया। बलवन्त ने भावुकता को बड़ी तेजी से उतार फेंका और ज्यों का त्यों धूल झाड़कर उठ खड़ा हुआ।

आशा ने अखबार में पढ़ा—'अविनाशचन्द्र की स्थिति नाजुक है।'

अखबार बन्दकर वह वातायन के पास जा खड़ी हुई। सूनी-सूनी आँखें हैं। सामने फैला विस्तृत सूना आकाश है। नीचे मनुष्यों का अविराम श्रोत।

आशा ने सोचा—'अविनाश की स्थिति नाजुक है।'

दिल को मजबूत बनाना चाहा। तर्क आया—'अविनाश अब उसका कौन है, कौन? उसके लिए वह क्यों अपनी प्रतिष्ठा खोए? क्यों वह उसके लिए मंथन करती रहे?...नहीं, वह नहीं जानना चाहती कि अविनाश कहाँ और किस हालत में हैं?...'

किन्तु तर्क तर्क ही भर था। हृदय का बाँध सारे तर्कों को बहा ले जाता था। आँखें छलक आईं।

सामने शिव का एक चित्र था। आशा ने अपनी डबडबाई आँखें उसी ओर लगा दीं। आँखों में जल होने से चित्र धुँधला दीख पड़ता था। वह दृष्टि दया की भीख माँगती नजर आ रही थी। आशा ने कुछ कहा नहीं। चुपचाप चित्र को देखती रही। बचपन का धार्मिक

संस्कार आज सतेज हो उठा। बहुत देरतक वह चित्र को देखती रही।

और इतने में बलवन्त आया। लापरवाही से उसने अपना हैट सोफे पर फेंक दिया। आशा की ओर उड़ती नजर देख व्यंग्य में बोला—"शायद आँसू अभी किसी की याद में बह चुके हैं?"

आशा चुप रही।

"यह बेहयाई मैं बरदाश्त नहीं कर सकता।"

उस ओर का उत्तर मौन ही रहा।

" मैं जानना चाहता हूँ, तुम क्या चाहती हो?"

स्वर में रूखाई की मात्रा अधिक थी। वह आशा के और भी निकट चला आया।

"नहीं बोलोगी?"

आशा फिर भी शान्त रही।

"मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे भोले चेहरे के भीतर जहर है!" और फिर वह दूसरी ओर मुड़ गया।

यही तो रोज का धन्धा है! यह बलवन्त असहिष्णु है। वह पूरा लेना जानता है। अधूरा और अधकचरा उसके 'कोष' में नहीं हैं। वह अपने सारे पौरुष से खेल रहा है।

दूसरे दिन आशा ने अखबार में फिर पढ़ा—

'गत सोमवार की हड़ताल में घायल मजदूर-नेता मिस्टर अविनाशचन्द्र की हालत नाजुक ही है। स्थिति में कोई सुधार नहीं दीखता।'

विद्रोह एकबार फिर उभड़ा। वह उठ खड़ी हुई। फाटक से बाहर निकल आई। दरवान 'बहूजी' की वेश-भूषा और मुख पर के भाव को देखकर सहम गया। उसे पूछने की इच्छा हुई किन्तु पूछ न सका। कुछ दूर जाने पर एक खाली ताँगा मिला। आशा ने कहा—"बड़ी हास्पिटल।"

कुछ क्षणों के पश्चात् वह अविनाश के सामने थी!

आशा ने एक ही दृष्टि में सब देख लिया। अविनाश के सिर और कन्धों पर पट्टियाँ थीं। वह आँखें बन्द किए लेटा था।

नर्स ने कहा—"मेडम, रातभर ये कराहते रहे हैं। अभी-अभी ही थोड़ी नींद आई है...।"

इसी समय में अविनाश कराह उठा। उसकी अधखुली आँखें खुलीं। आँखों ने जो दृश्य देखा, उस पर विश्वास करने को मन तैयार नहीं हुआ।

आशा और भी पास आ गई।

अविनाश की उल्लसित किन्तु हल्की आवाज आई—"आशा....!"

"हाँ आविनाश, मैं ही हूँ।" आँसू को बलपूर्वक रोक वह उसके सिरहाने बैठ गई।

अविनाश की अधखुली आँखें थोड़ी और फैल गईं।

वह बोला—"आशा, तुम आई हो!"

आशा उसके विवर्ण-मुख की ओर देख बोली—"अविनाश, तुम मुझे माफ न करोगे ?"

अविनाश कातर हो उठा। सिर्फ बोल सका—"आशा...!"

आशा रुँधे गले से कह रही थी—"अविनाश, मैं स्वयं को घृणा करने लगी हूँ...अपने पति के जीवन में भी आकर मैंने विष ही भर दिया !"

अविनाश ने आँखें बन्द कर लीं।

"मैंने बहुत चाहा अविनाश कि अपने को संयत करलूँ....किन्तु मैं अपनी पीड़ा न छिपा सकी...!"

अविनाश उठकर कुछ कहने जा रहा था कि नर्स (जो एक दूसरे रोगी का टेंपरेचर ले रही थी) ने रोककर कहा—"आप लापरवाही मत दिखलायें !"

अविनाश रुक गया।

पट्टी के भीतर का लाल रंग अभी उसके घाव की ताजगी प्रकट कर रहा था। आशा ने ठिठककर कहा—"तुम्हारी दशा देखकर खूब रुलाई आ रही है अविनाश....!"

अविनाश के फीके अधरों पर एक म्लान मुस्कुराहट दौड़ गई। बोला—"आशा, मैं मरूँगा नहीं। मौत मुझ पर ऐसी आसानी से कब्जा नहीं कर सकेगी....।"

आशा एकटक देखती रही।

और इतने में अविनाश ने चौंक कर पूछा—"उनसे पूछकर आई हो ?"

"नहीं।"

अविनाश का चेहरा उतर आया। बोला—"यह तुमने अच्छा नहीं किया आशा....उस दिन भी वे बहुत नाखुश थे....।"

"मैं उन्हें खुश भी नहीं कर सकती अविनाश, यह हमारी शक्ति के बाहर है।"

आशा का स्वर सुनकर अविनाश जरा चिन्तित हो गया।

अविनाश कुछ कहने जा रहा था कि नर्स वहाँ आ पहुँची। बोली—"मिस्टर, आप जरूरत से ज्यादा बोल रहे हैं....।" और आशा की ओर मुड़कर बोली—"मेडम, इन्हें ज्यादा डिस्टर्ब करना खतरनाक है।"

आशा और अविनाश चुप रह गये।

अविनाश आँखें बन्दकर कुछ सोच रहा था। कुछ क्षणों बाद उसने कहा—"आशा, तुम लौट जाओ।"

आशा उसकी ओर देखती रही।

"जाओ आशा...यहाँ मत ठहरो...तुम्हारे रहने से मेरा मन जाने कैसा कर रहा है।"

स्वर काफी कड़ा था। आशा उठ खड़ी हुई।

अविनाश ने लड़खड़ाई आवाज में फिर कहा—"आशा, तुम

खड़ी क्यों हो ?...जाओ न। मेरा सिर घूम रहा है। तुम्हें मेरी शपथ, चली जाओ...जाओ।"

और आशा इस तेजी से बाहर हो गई मानो उसे किसी ने ठेल दिया हो। वह बाहर आकर कुछ क्षणों तक ठिठकी रही : कुछ सोचती भी रही।

ताँगेवाला प्रतीक्षा कर रहा था। बोला—"बहुत देर हो रही है...।"

आशा बिना उत्तर दिए आकर बैठ रही।

× × × ×

लौटकर आशा चुपचाप अपने बिछावन पर पड़ रही। खाने की इच्छा नहीं हुई। मन भारी था। हृदय बोझ ले दबा जा रहा था।

उमड़ती पीड़ा को रोकने के लिए उसने किताबें खोलीं ; रेडियो की सुई को कई बार घुमाया ; वातायन के पास खड़ी हो लोगों के गमनागमन को देखती रही। किन्तु बेचैनी बेचैनी ही थी। किताबें रोमाँस से भरी हुई हैं। उनमें भी रुलाहट की ही मात्रा है। शरच्चन्द्र की पुस्तकें अब वह नहीं छूती। यह आदमी नहीं, पत्थर है। यह केवल दुःख ही दुःख देता है। देवदास, गृहदाह, चरित्रहीन, श्रीकान्त शेष-प्रश्न सभी तो एक ही धातु से बने हैं! रवीन्द्रनाथ की 'कुमुदनी' 'घर और बाहर' 'आँखों की किरकिरी' 'चार अध्याय' आदि पढ़कर वह खुश नहीं हो सकी है!

और यह रेडियो है जो निर्जीव पदार्थ होकर भी विरह के गीत गाना जानता है!

मन किसी तरह नहीं लगता। हाथों में मुँह छिपा वह सिसकती रही....सिसकती ही रही।

पाँच बजे बलवन्त लौटा। दरवान ने आकर कुछ कहा। सुनकर बलवन्त की भृकुटि तन गई। लम्बा डग भरकर वह आशा के कमरे में आ घुसा।

आकर ही गुर्राया—"अब क्या मेरे ऊपर कालिख पोतना चाहती हो ?...इतने से तुम्हारा जी नहीं भरा शायद....?"

आशा मौन रही।

"जानती हो, मैं तुम्हें एकदिन दुनिया में सबसे ज्यादा प्यार कर बैठा था....और आज दुनिया में मैं सबसे ज्यादा तुम्हें घृणा करता हूँ...!"

आशा का चेहरा लाल हो उठा।

"तुम स्त्री-जाति की एक कलंक हो !" बलवन्त की कड़ी आवाज आशा के कानों से टकराई।

आशा का लाल चेहरा मुर्दे की तरह सफेद हो गया।

"तुम क्या चाहती हो ?"

"मैं आज पिताजी के यहाँ जाऊँगी।" आशा ने शान्त स्वर में कहा।

"जाओ। मैं भी तुमसे यही कहनेवाला था।"

आशा चुप थी।

"तुमसे मैं दूर रहना चाहता हूँ...तुम्हारे भोले चेहरे से मुझे नफरत हो चली है !" आवाज भर्राई थी। स्वर रुँधा था ! वह उसी तेजी से लौट भी गया।

और, रात की गाड़ी से प्रायः सात महीने बाद, आशा अपने पिता के घर जा रही थी।

[अठारह]

होश आने पर उर्म्मिला ने पाया—वह एक सुसज्जित कमरे में है। बिजली की तेज रोशनी से कमरा चकाचौंध था। दीवारों पर कुछ युवती लड़कियों की तस्वीरें थीं। एक चित्र में एक चीनी लड़की अर्धनग्न अवस्था में अंगड़ाई ले रही थी; दूसरे चित्र में एक युवती अपने नग्न सौन्दर्य्य का प्रदर्शन कर रही थी।

उर्म्मिला ने माथे पर बल डालकर सोचा—मैं यहाँ कैसे पहुँच गई?

बातें समझ में आने लगी थीं। धुँधला आवरण हट रहा था।

उन पिशाचों के पंजे में वह दो दिन तक रही। निराहार—रोती और भीखती!...जब खाने के लिए उसे तंग किया गया, तो

उसने साफ इनकार कर दिया। एकबार उसे बाहों में भी कस लिया गया था ; किन्तु अपने दाँतों से उसे विच्छिन्न कर वह मरने-मारने को तैयार हो गई थी !

और फिर उर्म्मिला ने सुना, उसे बेच दिया जायगा !

जहीद बोला—"रहीम, यह लौंडिया अच्छे माल देगी। इसे अम्मी के हाथों बेंच दें।"

रहीम ने सिर खुजलाकर कहा—"हाँ यार, यहाँ तो यह कम्बख्त बिना खाये ही मर जायगी।"

उस रात बहुत देर तक जागने के बाद उसे एक हल्की तन्द्रा आई थी। ऐसे ही समय में उसने सुना—पैरों की चाप !...इन अड़तालीस घन्टों में वह एक क्षण भी न सो सकी थी। उसने आँखें मलकर देखा—वे ही दो दैत्य थे !

जहीद ने छुरा निकालकर दिखलाया—"चुपचाप मेरे साथ चलो वरना...।"

उर्म्मिला छुरा देखकर भयभीत नहीं हुई। चिल्लाकर बोली—"मार डालो...मुझे मार ही डालो कुत्ते....मैं मरने के लिए तैयार हूँ।"

कुछ क्षणों तक जहीद ठिठक गया। फिर रहीम से बोला—" रोशनी आगे लाओ रहीम ; आज ही रात को सौदा तय हो जाने की बात है।"

फिर बलपूर्वक उसने उर्म्मिला को खींचकर मुँह में कपड़ा

ठूँस दिया। बाहर एक इक्का खड़ा था जो शायद इसी मौके की इन्तजारी में था। इक्के को कपड़े से घेर दिया गया था!

...उर्म्मिला ने पाया, वह एक सुसज्जित कमरे में है। उसका माथा झनझना रहा था; आँखें जल रही थीं; कंठ सूख रहा था।

एक अधेड़ औरत उसके सिर पर हाथ फेर रही थी। वह बोली—"घबड़ाने की बात नहीं है बेटी, यह तुम्हारा ही घर है। मैं भी हिन्दू हूँ—बाम्हिन।"

उर्म्मिला ने साँस रोककर पूछा—"तुम हिन्दू हो? ब्राह्मिण....?"

"हाँ बेटी, मैंने उन मुसलमानों से तुझे बचाया है....तू कई शाम की भूखी है...उठ, पहले खा ले।" कहकर उस अधेड़ औरत ने कुछ पूरियाँ और मिठाइयाँ उर्म्मिला के सामने रख दीं।

उर्म्मिला भूखी थी: अत्यन्त भूखी। किन्तु फिर भी वह पेशोपेश में थी। वह संदेह की दृष्टि से सब देख रही थी।

अधेड़ औरत ने पुचकारकर कहा—"तुम्हें मेरी सौगन्ध, खाओ बेटी। कोई शक मत करो...मैं तुम्हारी माँ के बराबर हूँ।"

'माँ' शब्द सुनते ही उर्म्मिला पिघल गई। हाय, आज यदि उसकी माँ होती!...वह सुबक-सुबककर रो पड़ी। इन कई दिनों की क्रूर घटनाओं में पड़, वह मानो पिस-सी गई थी। हाय, सभी ओर से तो उसे 'धोखा' ही मिला!...कहाँ वह विशुद्ध स्नेह का एक कण भी पा सकी?...सारी दुनिया तो उसे निगलने के लिए तैयार है। यह यौवन, यह जीवन तो भार हो गए हैं!

उर्म्मिला ने थोड़ा खाकर पानी पी लिया। आँखें जल रही थीं। जल की शीतलता भी उसके कंठ की जलन को न रोक सकी थी!

अधेड़ औरत ने कहा—"तुम सो जाओ बेटी...रात बहुत हो गई है।" और यह कहकर वह उर्म्मिला के सिर पर हाथ फेरने लगी।

उर्म्मिला इस इतनी बड़ी आत्मीयता को बिना संदेह की दृष्टि से देखे न रह सकी। उसका हृदय जला था—मुँह गर्म दूध से काफी झुलस चुका था। अब वह फूँक-फूँककर कदम रखना चाहती थी। हृदय किसी बात पर विश्वास करने को सहज में तैयार नहीं होता था। जलती आँखें बहुत देर तक खुली रहीं। चिन्ताओं और संघर्षों में उसकी सारी विचार-शक्ति पंगु हो रही थी। रात्रि के अन्तिम प्रहर में आप से आप आँखें लग गईं और जब वे खुलीं तो सूरज काफी आगे बढ़ चुका था।

कलवाली अधेड़ औरत आज भी उसके सिर पर हाथ फेर रही थी। उर्म्मिला ने इसबार दिन के प्रकाश में देखा—चेहरे पर मातृत्व की जो आभा रहनी चाहिए, वह पूरी मात्रा में नहीं दीखती। मुख पर की झुर्रियाँ शायद बतला रही थीं कि इसका अतीत कभी बुलन्द था। रंग गोरा था; फिर भी वह गोरापन उज्ज्वल नहीं था। वह क्या था, इसकी 'संज्ञा' उर्म्मिला न पा सकी।

अधेड़ औरत बोली—"उठ बेटी, नहा धोले....तू मुझे आज से 'अम्मी' कहा करना...तेरी जैसी मेरी भी एक बेटी कभी थी....!"

उर्म्मिला ने देखा, वह विचलित-सी है। उसने समझा, अतीत उसे रुला गया है अभी अभी। सहानुभूति से वह गल गई।

पास आकर अम्मी बोली—"बेटी, तुझमें मैं अपनी किशोरी को ही देखती हूँ। तेरी ही जैसी उसकी भी उम्र थी; ऐसी ही बड़ी बड़ी उसकी आँखें थीं; ऐसा ही सोने का चेहरा था...हाय! भगवान से मेरा सुख नहीं देखा गया...कच्ची उमर में ही उसे बुला लिया!"

उर्म्मिला ने देखा, अम्मी आँचल को आँखों के पास ले गई है। उर्म्मिला भी पिघल गई।

इसके बाद बहुत देरतक अम्मी ने उर्म्मिला को ऊँचा-नीचा समझाया। उर्म्मिला के मुख से उसने बड़ी चालाकी से उसका अतीत निकलवा लिया। उर्म्मिला की भावुकता ने 'अम्मी' को सारी बातें बतला दी।

बातें सुनकर अम्मी ने गंभीर मुद्रा बनाकर कहा—"बेटी, तेरी कहानी सुनकर मुझे भी अपने पुराने दिन याद आ गए। एकदिन तुम्हारी ही तरह मैं इस घर में आई थी।...जानती हो बेटी, दो रोटियों के लिए तुझे हर जगह अपनी आबरू खोनी होती...अब तू निश्चिन्त रह।...वे सैकड़ों तेरे पैर चूमेंगे जो कल तक तुझे भूखी आँखों से देखते थे!"

उर्म्मिला सकपका गई। कुछ सहमी भी। फिर भी साहस बटोर

कर वह पूछ बैठी—"मुझे क्या करना होगा ?...तुम मुझे मेरे मामा के यहाँ पहुँचा दो...मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ...।"

अम्मी ने हँसकर कहा—"तू नादान है बेटी...तू क्या समझती है कि तेरे मामा या और भी कोई रिश्तेमंद तुझे अपने पास रक्खेगा ?"

उर्म्मिला कुछ सोच में पड़ गई।

अम्मी ने कहा—"बेटी, डरने की कोई बात नहीं। मैं उस्तादजी को भेजती हूँ....वे तुझे गाना बहुत जल्द सिखला देंगे।"

और अम्मी के चले जाने पर उर्म्मिला ने सोचा—"भगवान, अब क्या यही मंजूर था ?"

उस्तादजी आए। तबले ठनके ; सारंगी के तार झनझनाये ; और साथ ही साथ बूढ़े उस्तादजी ने अपनी सुफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अलापा—'हाय राम ! मार गयो एक तीर !'

उर्म्मिला की धमनियाँ मानो रुक गईं। दम घुटता-सा लगा। आँखें बन्दकर वह चिल्लाई—"मैं यह सब नहीं कर सकूँगी...मैं यह सब नहीं सह सकूँगी !"

अम्मी ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी, ये सब तेरे अपने आदमी हैं। तू डर मत। पहले कुछ झूठी शरम होती ही है।"

दिन बीतते गये ; रातें गुजरती गईं। उर्म्मिला ने पाया—हाय, यह तो दूसरा कैदखाना है !

उसने देखा, उसके लिए भागने के रास्ते बन्द हैं। उसपर

पहरेदार हैं, जो उसकी प्रत्येक गति-विधि की सूचना अम्मी को देते हैं।

फिर भी अम्मी और पिशाचों से कुछ उदार ही प्रतीत हुई। कभी-कभी अम्मी उसे अपनी गोद में लेकर बहुत कुछ समझाती। अनुभव की बहुत बातें बतलाती। और इधर तो वह दोपहर को उर्म्मिला से 'रामायण' पढ़वाकर सुनने लगी है।

अम्मी कहती है—"पढ़ तो बेटी, जरा वह फुलवारी-वाली कथा...अहा, सुनने में कितना अच्छा लगता है!"

उर्म्मिला रामायण उठाकर वह अंश निकालती है। उसके चेहरे पर शान्ति आ जाती है—कुछ गंभीरता भी।

स्वर आप ही आप फूटता है। हृदय का उल्लास मानो रामायण की उस कथा से घुलमिल गया है:—

"सकुचि सीय तब नैन उघारे : सम्मुख दोउ रघुसिंह निहारे
परवश सखिन लखी जब सीता: भये गहरु सब कहहिं सभीता।"

कथानक पर रंग चढ़ रहा है:—

"देखन मिसु मृग विहँग तरू, फिरति बहोरि बहोरि
निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढ़ी प्रीति न थोरि।"

और उर्म्मिला का दीर्घ उल्लास आपही आप यह पढ़कर निकल पड़ता है :—

"मन जाहि राचो मिलहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो
करुणानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो

इहि भाँति गौरि अशीश सुनि सिय सहित हिय हर्षित अली
तुलसो भवानिहिं पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली।"

उर्म्मिला की पलकें भारी हो चलती हैं। कुछ बूँदें आँखों के कोर में इकट्ठी हो जाती हैं। आँखों में धुँधलापन के कारण अक्षर अस्पष्ट लगते हैं! हृदय भर आता है। वाणी लड़खड़ा उठती है...

अम्मो चौंककर हुक्के से मुँह अलगकर पूछती है—"क्यों बेटी, जी भारी है क्या?"

"हाँ।" कहकर वह रामायण बन्द कर देती है। बहुत देर तक वह उस दृश्य की कल्पना में विभोर हो जाती है। सीता और रघुवीर के चित्र आँखों के आगे आ खड़े होते हैं। ...कुछ क्षणों के लिए वह अपने दर्द को, अपनी असह्य पीड़ा को, अपने अत्यन्त कलुषित अतीत को भूल जाती है। उस समय न तो श्यामसुन्दर के प्रति उसके हृदय में घोर घृणा रहती है, न उस मैले, घिनौने, पीले दाँतोंवाले उस बनिए का 'प्यारी' शब्द ही हृदय से टकराता है। उन दो कुत्तों की भूखी आँखें भी उस क्षण घूरती नहीं नजर आतीं। ...रामायण के पात्रों में वह रघुवीर के रूप में अपने उस देवता को देखती है, जो उससे बहुत दूर चला गया है!....वही हँसता मुख ...स्नेह से भरी आँखें... उन्नत ललाट...चौड़ी छाती....

वह सोचती और सोचती रह जाती। तन्मय हो रहती। स्मृति की पीड़ा भी मधुर प्रतीत होती है।

किन्तु इन बातों से उर्म्मिला को सांत्वना कुछ ही क्षणों के लिए

मिलती। रामायण बन्द होने के साथ ही वास्तविकता अपनी सारी नग्न कुरूपता के साथ सम्मुख आ खड़ी होती। तलहथी पर गाल रखकर वह बहुत देर तक विचारों में मग्न रहती। सारा विश्व आज उसके सम्मुख अंधकारमय है।...उसने अम्मी के छोटे नौकर को काफी प्रलोभन देकर अपने मामा पंडित शिवनारायण शुक्ल का पता लगाने 'गड़ेरिया-मोहाल' भेजा था....दो घंटे बाद वह लड़का लौट आया। निर्विकार भाव से बोला—"लोग कहते हैं, इस नाम का एक आदमी कुछ दिन पहले रहता था। अब वह कहाँ है, नहीं मालूम।"

उत्तर सुनकर उर्मिला ठिठक गई। उसे लगा, मानो सारे विश्व का प्रकाश अचानक ही किसी दैविक प्रकोप से लुप्त हो गया है! रह गया है मात्र अंधकार—घोर तम!

संध्या होते ही होते उसे सज जाना पड़ता। लिपस्टिक से ओठ रंगना होता...साबुन से मुँह धोकर पाउडर मलना होता। नाक में नथ तो सदा ही पहनना पड़ता! दर्पण के सामने जब वह खड़ी होती, तो अपने रूप पर वह स्वयं चकित रह जाती!

अम्मी बलैया लेती हुई कहती—"अहा! मेरी लाड़ली-सी सुन्दर दुनिया में कभी पैदा भी हुई होगी?...सच कहती हूँ बेटी, तू तो रंभा और मेनका को भी लजा देगी...कौन है तेरी जोड़ का इस शहर में?"

उस्तादजी ने कुछ गाने सिखला दिए थे। मन मार कर वह गाती। महफिल जमने लगी थी। उर्मिला के रूप का विज्ञापन रूप

की हाट के ग्राहकों के लिए एक आश्चर्य्य ही था। भौरों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी हो चली थी।

उर्म्मिला पहले तो बहुत खीझी, झुंझलाई, सिर पटकती रही, आँसू की गंगा-यमुना बहा दी : किन्तु धीरे-धीरे ज्वार चला गया था। रह गया था मात्र भाटा! अब उसके चेहरे पर शान्ति आ चली थी; हृदय का बवंडर भी अब मस्तिष्क को उलट-पुलट नहीं जाता था।

कंचन की वर्षा शुरू हुई। देखते-ही-देखते कुछ ही सप्ताहों में अम्मी का 'कोठा' हरिहर-क्षेत्र का मन्दिर हो उठा! भक्त अपनी सारी निष्ठा के साथ देवी के प्रांगण में आते थे।

अम्मी को खुशी का ठिकाना न था। वह तो कभी-कभी खुशी में उर्म्मिला से लिपट जाती। विह्वल शब्दों में कहती—"बेटी, तू तो मेरे पेट की बेटी से भी अपनी है!"

बहुत रात बीतने पर जब महफिल नए जोश से दूसरे दिन बसने के लिए विसर्जित होती, तो उर्म्मिला गाने के परिश्रम से चूर-चूर हो जाती। किवाड़ को बन्दकर वह जमीन पर चटाई बिछाकर सो रहती। पलंग और कोच खाली पड़े रह जाते। बहुत देर तक वह सोचती रहती....लोगों की भाव-भंगिमा...उनकी आँखों का कुत्सित रंग...उनकी प्रशंसा के नीचे दबी हुई उनकी नग्न-भावना!

उन सभी महापुरुषों की तस्वीरें नाच जातीं तो उसके प्रेम में

विह्वल थे.....अधेड़ सेठ, जिसकी तोंद काफी मोटी थी...लम्बी टीका लगाए, रेशमी दुपट्टा ओढ़े, दुबला-पतला महन्त, जो हाल ही में एक विशाल मठ का उत्तराधिकारी हुआ है...गंजे सिरवाला स्कूल का रंडुआ मास्टर...बीमा कम्पनी का मैनेजर...स्टेट के जागीरदार...कॉलेज के छोकड़े...

तोंदवाला सेठ पदुममल ढनढनिया सब से अधिक व्याकुल था। वह उर्म्मिला के लिए बेशकीमती साड़ियाँ और नए डिजाइन के गहने लाया करता। एकदिन उर्म्मिला ने अम्मी और सेठ को फुसफुसाते सुना था।

सेठ कह रहा था—"अब कब तक ओस चटाती रहोगी ?"

अम्मी ने जरा तुनक कर जवाब दिया—"सेठजी, नथ क्या इतने में उतर सकता है ?...वह अभी एकदम कली है। यह मामला इतनी जल्दी नहीं निपट सकता. महन्तजी तो आपसे अधिक देने को तैयार हैं !"

"कितना वह महन्त देता है ?" सेठ ने तैश में आकर पूछा।

"दो हजार !" अम्मी ने जरा ओठ विकृतकर कहा।

"मैं ढ़ाई हजार दूँगा !" सेठ ने फड़ककर कहा।

दूर रहने पर भी उर्म्मिला ने देखा, अम्मी का चेहरा खुशी से फूल उठा है। अम्मो ने कुछ रुककर कहा—"सेठजी, थोड़ा और सब्र करना होगा...अभी वह बहुत डर रही है....उसे जरा रास्ते में लाना होगा।"

फिर उर्म्मिला ने देखा, अम्मी कतराकर दूसरी ओर निकल गई है।

...और यह महन्त धनेशजी हैं, जो सदा प्रेम की आहें भरा करते हैं। गाल पिचके हैं; आँखें धँसी हैं; शरीर पर हड्डियां का ढाँचा मात्र है। फिर भी प्रेम के ये पुजारी, बीसवीं सदी के ये मजनूँ, अपनी देवी के दर्शन को आही जाते हैं। आते ही वह जयदेव के 'गीतगोविन्द' की पंक्तियाँ दुहराते हैं :—

"त्वमसि मम भूषणं, त्वमसि मम जीवनं
त्वमसि मम अवजलधि रत्नम्
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
तत्र मम हृदयमति यत्नम्!"

और लौटने के समय, शराब की खुमारी में लड़खड़ाते स्वर में कह जाते हैं :—

"सत्य मेवासि यदि सुदतिमयि कोपिनी
देहि खरनखर शर घातम्
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं
येन वा भवति सुख जातम्।"

इसी तरह के एक और भी मजनूँ हैं—मास्टर रतनलाल—गरीब आशिक! एक स्कूल में ये अँगरेजी पढ़ाते हैं। एम० ए० इन्होंने अँगरेजी में दी थी। किन्तु थर्ड क्लास आने के कारण एक स्कूल की मास्टरी पर ही संतोष करना पड़ा। घर में कोई नहीं है।

एक पत्नी थी, जो इन्हें सभी बंधनों से मुक्तकर आज से सात साल पहले चली गई। अब वेतन का अधिकांश भाग 'अम्मी' के कोठे और शराब की बोतलों पर खर्च हो जाता है। उर्म्मिला के निकट आते ही अँगरेजी की सारी रोमांटिक कविताएँ इनकी जुबान पर आ जाती हैं। शेक्सपियर और मिल्टन, वर्डस्वर्थ और कॉलरिज, शेली और कीट्स, सभी के रोमांटिक गीत इन्हें याद आ जाते हैं। और विशेषकर उमरखैय्याम की रुबाइयां (अँगरेजी में फिटजराल्ड द्वारा अनूदित) में तो इनकी पूरी दिलचस्पी है। जहाँ एक ओर महन्त धनेशजी के 'गीतगोविन्द' की पंक्तियाँ गूँजती हैं, वहाँ हमारे मास्टर रतनलाल भी कहने से नहीं चूकते :—

"Dreaming when Dawn's left Hand was in the sky
I heard a voice within the Tavern Cry,
Awake, my Little ones, and fill the Cup
Before Life's Liquor in its Cup be dry"

और :—

Here with a Loaf of Bread beneath the Bough,
A Flask of wine, a Book of Verse—and thou
Beside me singing in the wilderness—
And wilderness is Paradise enow."

उर्म्मिला इन विचित्र लोगों को देखकर नहीं समझ पाती, वह क्या करे ?...न तो 'गीतगोविन्द' की पंक्तियों का वह अर्थ समझ पाती और न हमारे मास्टर रतनलाल की दर्दभरी रूबाइयों का !

इनलोगों के उत्पात से, शराब और सिगरेट की तेज एवं बदबूदार गंध से जब वह छुट्टी पाती है तो बड़ी तेजी से अपने कमरे की ओर चल पड़ती है। कमरा बन्दकर वह जल्दी-जल्दी साँस लेती है मानो उसका दम घुट रहा हो! हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। साँस तेजी से चलने लगती है। उर्म्मिला सोचती है, यह जीवन वह कबतक ढो सकेगी?...हाय, मौत आकर क्यों नहीं अपने पंजे में उसे छुपा लेती है?...मौत का पंजा आदमी के पंजे से अधिक भयानक नहीं है। आदमी का पंजा नोच-नोचकर खाना जानता है; किन्तु मौत का पंजा एकबार ही उठता है। उठता है और सदा के लिए छुट्टी दे जाता है। आदमी का पंजा इतना उदार नहीं है।

उर्म्मिला आँखें बन्दकर मनही-मन प्रार्थना करती है—"भगवान, मुझे आदमी के पंजे से बचाओ...बचाओ। मेरी ओर मौत का पंजा बढ़ाओ...हाय, मेरी ओर मौत का पंजा बढ़ाओ!"

[उन्नीस]

उसदिन अविनाश ने कहा था—'मैं इतनी जल्द नहीं मरूँगा।' बात उसकी सच ही थी। कुछ दिनों तक पीड़ा रही फिर हालत में धीरे-धीरे सुधार आता गया। बाहर का घाव अच्छा हुआ; किन्तु साथ ही हृदय के भीतर एक दूसरा घाव लगा। उसने सुना—मजदूरों में फूट हो गई...चन्द्रशेखर जो सबसे अधिक लाल-पीला होता था, स्वयं काम पर जाने लगा है!...बाकी मजदूर भी काम पर गये...कुछ बर्खास्त हुए, कुछ को दया की भीख मिली। अब बलवन्त के मिल की चिमनियाँ तेजी से धुआँ उगल रही हैं!

खबर सुनकर अविनाश को विशेष आश्चर्य्य नहीं हुआ; फिर भी दिल में एक चोट आई। यह उसकी हार थी। वह बाजी हार गया था।

और जब वह हास्पिटल छोड़कर अपने कमरे में आया, तो उसे खूब ही रोने की इच्छा हुई। एक बच्चे की तरह, एक असफल विद्यार्थी की तरह! भावुकता ने अर्थशास्त्र के उस एम० ए० को झकझोर ही डाला!

दूसरे दिन वह कॉलेज गया।

प्रिन्सपल ने कहा—"आप अभी नवयुवक हैं। आपके सामने सारा फ्यूचर है। आप अच्छे स्कालर हैं; आगे बढ़कर इस लाइन में बहुत कुछ कर सकते हैं...मुझे मजबूर होकर आपको यह चेतावनी देनी पड़ रही है कि आपको कारवाइयों से मैनेजिङ्ग-कमिटी का रुख बुरा हो रहा है...आपको बाहरी मामलों में दिलचस्पी नहीं रखनी चाहिए...।"

अविनाश का हृदय विद्रोह करने पर उतारू हुआ: किन्तु एकाएक वह रुक गया। २००) की नौकरी का लोभ उसे नहीं था। था एक कर्त्तव्य—एक कठोर बंधन। अपने पर ज्यादा से ज्यादा वह ४०) खर्च करेगा। बाकी पैसों से वह बर्खास्त हुए मजदूर-परिवारों के भूखे पेट में एक मुट्ठी चने तो देगा!...हास्पिटल से यही निश्चय कर वह चला था।

सिर झुकाकर अविनाश ने चेतावनी सुन ली।

कॉलेज से लौटकर उसने बड़ी उदासीनता पाई। मन क्षुब्ध था—सागर की चंचल तरंगों की तरह!

बाहर आकर वह जंगले के पास आ खड़ा हुआ। कुछ देर तक अन्यमनस्क-सा खड़ा रहा।

एक नौकर ही उसका रसोइया और असिस्टेंट था। भीतर वह स्टोव पर केटली में चाय का पानी गर्म कर रहा था। अपने मालिक को इस तरह खड़ा देख पूछा—"कुर्सी निकाल दूँ हुजूर...?"

विना उसकी ओर देखे अविनाश ने उत्तर दिया—"नहीं।"

और इसी समय उसके बगल में रहनेवाले मास्टर रतनलाल आ धमके। उल्लसित कंठ से उन्होंने कहा—"हैलो मिस्टर!... आप फिर आ गये!...मैंने तो समझा था, आपके दर्शन नहीं होंगे।"

अपने इस पड़ोसी से अविनाश ने घनिष्टता नहीं बढ़ाई थी। कुछ तो अवकाश की कमी के कारण और कुछ अपनी एकान्त-प्रिय मनोवृत्ति से।

मास्टर रतनलाल ने चौंककर कहा—"अरे...आपतो बहुत उदास मालूम पड़ते हैं?"

अविनाश ने मास्टर रतनलाल की ओर अच्छी तरह देखा। चेहरे पर खून नहीं है: फिर भी एक आकर्षण-शक्ति है।...ओवरकोट अपनी प्राचीनता का विज्ञापन आप ही दे रहा है। कई जगह उसमें छेद भी हो गये हैं। धोती अस्तव्यस्त दशा में है।....सिर गंजा है और किनारे के बाल पकने शुरू हुए हैं...आँखों में एक तेज पावर का चश्मा है जिसमें से मास्टर रतनलाल की आँखें बातें करते समय नाचती नजर आती हैं!

अविनाश ने नौकर को बुलाकर कुर्सियाँ मंगवाईं।

मास्टर रतनलाल बोले—"अखबार में आपकी खबरें पढ़ लेता था...ब्रेभो!... आप तो सचमुच "इनटेलेकचुएल जैन्ट हैं!"

चाय का प्याला बढ़ाते हुए अविनाश बोला—"किन्तु हार तो हमीलोगों की हुई है।"

मास्टर रतनलाल ने कहा—"नो नो...यह आपकी हार नहीं, जीत है....आपने एक नमूना पेश तो किया!"

और इसके बाद बहुत देर तक अविनाश मास्टर रतनलाल की बातें चुपचाप सुनता रहा। उन्होंने आप ही आप अपना सारा परिचय, अपना सारा कच्चा-चिट्ठा खोलकर रख दिया।...दुर्भाग्यवश एम. ए. में थर्ड क्लास आना, पत्नी की मृत्यु, उमरखैय्याम का प्रभाव...सभी विषय स्पष्ट हो गए।

उनकी बातें सुनकर अविनाश के मन में जो थोड़ी बहुत दुर्भावना थी, वह निकल गई। अविनाश ने पाया—यह मनुष्य जलन ही में पैदा हुआ है : जलन ही में आनन्द पाता है। सहानुभूति उमड़ आई।

संध्या बीत गई थी। नौकर आकर स्विच ऑन कर गया था।

"घूमने चलिएगा?" मास्टर रतनलाल ने पान से रंगे दाँतों से हँसकर पूछा।

"घूमने? इस समय?"

"यही तो सैर का वक्त है मिस्टर!"

"सैर का वक्त!" अविनाश न समझ सका।

"हाँ जनाब,...उमरखैय्याम की दुनिया में...!"

अविनाश अब बात समझ सका था। वह कुछ सोचने लगा। चेहरा गंभीर हो गया। फिर बोला—"चलिए...।"

"सच ?...आप चलेंगे ?...मैंने तो समझा आप 'प्यूरिटन' हैं !" मास्टर रतनलाल ने आँखें नचाकर कहा।

"हाँ, अबतक उस कूचे से मैं अपरिचित ही रहा हूँ। रूसी लेखक 'कुप्रिन' की 'यामा' से कुछ जानकारी अवश्य हो गई है।"

रतनलाल ने छड़ी घुमाते हुए कहा—"अरे छोड़िए कुप्रिन की बात। उसने तो सिर्फ नरक ही नरक दिखलाया है...आज मैं आपको स्वर्ग भी दिखला दूँगा।"

अविनाश मजबूत पैरों से कदम बढ़ा रहा था। प्रायः पौन घंटे बाद वे रूप की हाट में थे।

अविनाश ने देखा, यह भी एक दुनिया है जहाँ रात ही दिन है !

'अम्मी' के कोठे के पास रतनलाल आ खड़े हुए। आँखें नचाकर बोले—"कामरेड, आपका मैं वह चीज दिखलाऊँगा जो न जाने कितने उमरखैय्याम, शेली और कीट्स पैदाकर सकती है !"

अविनाश कमजोर दिल का न था ; फिर भी न जाने क्यों उसके पैर ठिठक ही रहे। युग का पुरातन संस्कार शायद उसके पैरों से अब भी चिपका था।

मास्टर रतनलाल ने सीढ़ियाँ चढ़ते कहा—"आइए, आइए, आप ठिठक क्यों रहे ?"

अविनाश अपने को संयतकर आगे बढ़ आया। कुछ ही क्षणों के बाद वह उमरखैय्याम की दुनिया में था !

उसकी आँखों ने जो देखा तो वहीं ठिठक गईं।...यह मूर्त्ति

तो उसकी आशा से मिलती-जुलती है !....वैसी ही बड़ी-बड़ी शान्त आँखें हैं...वैसी ही मुख की आकृति है !

अविनाश अपनी आँखें उस ओर से न फेर सका।

मास्टर रतनलाल ने ओठों से मुस्कुराकर कहा—"कहा था न ?"

अविनाश की आँखें अब भी उसी ओर थीं, वे क्या सुलझा रही थीं, यह कौन जाने ?...

अम्मा ने पास आकर कहा—"आइए...बैठिए...।"

और जब उर्मिला ने आँखें उठाकर देखा, तो दो आँखों को अपनी आँखों में पाया। वह अपनी आँखें न फेरसकी !...उसे लगा, ये आँखें तो उसके हृदय में उतर रही हैं....

उर्मिला ने देखा—ये आँखें विचित्र हैं जो उसकी सारी चेतनता को हिला गई हैं !...निश्चय ही ये आँखें किसी भूखे और आवारे की नहीं हैं....

उर्मिला के गाने के स्वर में कुछ लड़खड़ाहट आई; मुँह पर पसीना आया; और हृदय में आया एक ज्वार ! फिर भी अपने को रोक वह गाती रही...गाती ही रही।

उर्मिला ने देखा—सभी तो 'दाद' दे रहे हैं...चुटकियाँ ले रहे हैं और ये ?....ये तो भोले शिशु की तरह उसे देख भर रहे हैं !

सेठजी ने महन्त के कान में फुसफुसाकर कहा—"यह कौन जंगली आ पहुँचा ?....इस तरह घूर रहा है मानो कभी औरत देखा ही नहीं !"

महन्तजी के बगल में बैठे बीमा कम्पनी के मैनेजर ने बात सुनकर कहा—"नया मजनूँ है सेठ !"

महन्तजी ने ओठ बिचका दिए।

अम्मी जब पान लेकर उसके सम्मुख आ खड़ी हुई तो अविनाश की चेतना लौटी। शर्म से उसका मुँह लाल हो उठा। छाती की धड़कन बढ़ गई।

मास्टर रतनलाल से बोला—"चलिए, डेरे चलिए....।"

मास्टर रतनलाल ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में न थे। चौंक कर बोले—"अरे !.... अभी ही ?... अभी तो शुरू ही हुआ है !"

हड़बड़ाकर मास्टर रतनलाल उठ खड़े हुए। अविनाश ने उनकी बाँह पकड़ ली।

बाहर आकर रतनलाल ने पूछा—"आखिर बात क्या है ? आप ऐसे क्यों हो रहे हैं...आप ?...."

अविनाश बिना उत्तर दिए बड़ी शीघ्रता से अपने कदम बढ़ाता गया...बढ़ाता ही गया।

कई दिनों तक अविनाश उलझन में रहा। उस रात की घटना ने उसके हृदय पर अमिट छाप डाल दी थी। सोई हुई पीड़ा किसी कोमल तंतु से छूकर मानो और भी करुण हो गई।

मास्टर रतनलाल ने माथे पर बल डालकर कहा—"स्ट्रेंज !... आपतो अजीब हैं !" और इसके बाद उमरखैय्याम की दुनिया में अविनाश को साथ न ले जाने की उन्होंने प्रतीज्ञा कर ली।

आज अविनाश का मन पूरा उचट गया है। कॉलेज में एक लिफाफा मिला था जो हास्पिटल से 'रिडाइरेक्ट' होकर उसके पास पहुँचा था। लिफाफा के भीतर सिर्फ दो लाइनें थी—"मैं अपने पिता के घर आ गई हूँ। आप अच्छे होंगे, ऐसा विश्वास है।—आशा"

पत्र पढ़कर अविनाश को लगा, मानो कोई बुरा ग्रह उसके सिर पर अभी-अभी ही चढ़ गया है! हृदय के भीतर कुछ उमड़ा और उमड़-घुमड़ कर रह गया।

अस्वस्थता का बहानाकर वह कॉलेज से लौट आया है। भरी दोपहरी है। कमरे का सूनापन बड़ा मनहूस लग रहा है। बर्नाड शॉ का 'The Intelligent woman's guide to Socialism and Capitalism' वह एकबार पढ़ चुका है। फिर भी उठाकर इधर-उधर के पन्नों में वह अपने को बहलाना चाहता है। किन्तु मन है, जो पकड़ में नहीं आता। वह छूट छूट कर छिटक ही जाता है।

आँखें बन्दकर उसने सोने का उपक्रम किया; पर असफल ही रहा। उठकर चहल-कदमी करने लगा। इसके बाद चप्पल पहनी; कमीज डाली और एक ओर बढ़ गया।

वह चलता गया और कुछ देर बाद 'अम्मी' के कोठे तक पहुँच गया।

वह रुक गया। खड़ा कुछ सोचता रहा; और इतने में जिस वस्तु पर दृष्टि पड़ी, उससे तो वह और भी चंचल हो गया।

उर्म्मिला की आँखें उसे एकटक देख रही थीं।...वह सोच रही थी, क्या यह भी उन्हीं लोगों में से एक है ?...क्या यह भी अपनी नंगी पशुता का ही प्रदर्शन करने, इस भरी दोपहरी में आया है ?

अविनाश मुड़कर आगे निकल जाने को हुआ। इसी समय एक कोमल आवाज आई—"सुनिए...रुकिए जरा !"

अविनाश न बढ़ सका।

उर्म्मिला ने कहा—"भीतर चलिए, अम्मी अभी सो रही हैं।"

दोनों एक दूसरे के सम्मुख बैठे थे।

उर्म्मिला ने किंचित फीकी हँसी हँसकर पूछा—"आप भी मुझसे 'प्रेम' करने आए हैं ?"

प्रश्न ने अविनाश को चौंका दिया। वह नहीं सोच सका कि वह क्या उत्तर दे ?

उर्म्मिला बोली—"आप मेरे लिए एक कष्ट करेंगे ?"

अविनाश ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से उर्म्मिला को देखा।

"आप मुझे थोड़ा जहर ला देंगे ?"

"जहर !" अविनाश चकित रह गया।

"हाँ जहर, पहले समझती थी, अपने को मारना सबसे बड़ा पाप है...इससे तीनों कुल नरक में जाते हैं। पर अब मैं यही पाप करूँगी।"

बात अविनाश के लिए एक पहेली रही।

इसबार उर्म्मिला ने स्वर को थोड़ा धीमा कर कहा—"अम्मी

अभी सो रही है। उठकर आपको देखेगी तो रंज होगी। आपके पास रुपए हैं ?"

अविनाश ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ, हैं।"

"तो विशेष चिन्ता की बात नहीं।"

कुछ क्षणों तक चुप्पी रही।

उर्मिला ने पूछा—"आप यहाँ किसलिए आए हैं ?"

स्वर काफी शान्त और दृढ़ था ; फिर भी अविनाश के माथे से पसीना आ गया। लड़खड़ाकर जवाब दिया—"तुम...तुम्हारी जैसी मेरी आशा भी है...!"

उर्मिला एकटक अविनाश को देखती रह गई। फिर अधरों पर एक म्लान मुस्कान ले बोली—"आपको देखकर मुझे भी 'उनकी' याद आ जाती है !"

कुछ क्षणों तक फिर चुप्पी।

अविनाश ने पूछा—"यह तुम्हारी माँ नहीं है ?"

"नहीं।"

"तो तुम यहाँ कैसे आई ?"

"जला कपाल है !" कहकर उर्मिला ने दीर्घ साँस ली।

"तुम लड़कपन से यहीं हो ?"

"नहीं।"

"तो.... ?"

"हाल से ही....पाँच-छ महीने हुए....।"

"तुम्हें यह पेशा पसन्द है ?"

"हाँ, पसन्द है।" कहकर उर्म्मिला गंभीर हो गई।

अविनाश ने चकित हो पूछा—"तो तुम जहर क्यों खोज रही हो ?"

"मरने के लिए...।"

पहेली उलझी ही रही। अविनाश सोचता रह गया।

इस बार उर्म्मिला ने पूछा—"आशा कौन है ?"

अविनाश ने उत्तर नहीं दिया।

"आपकी शादी हुई है ?"

अविनाश ने सिर हिलाकर अस्वीकृति जनाई।

"आप कालेज में पढ़ाते हैं, यह बात रतन बाबू से मालूम हुई थी।" कहकर वह चुप हो गई।

अविनाश कुछ कहने जा रहा था कि अम्मी आँखें मलती आ पहुँची। दोनों को देखकर ठिठकी। फिर अविनाश को पहचानकर बोली—"अरे...आप बाबूजी ?...मैं तो पहचान ही न सकी... बैठिए...उसदिन आपको क्या हो गया था ?"

"चक्कर।" कहकर अविनाश उठ खड़ा हुआ। पाँच रुपये का नोट थमाकर आगे बढ़ गया।

अम्मी नोट थामे भौंचक-सी खड़ी रह गई। फिर एक कुटिल मुस्कान उसके ओठों पर फैल गई। उर्म्मिला की ओर देखकर बोली—"सनकी मालूम होता है !"

डेरे पर लौटते ही अविनाश के सिर में दर्द होने लगा। 'न्यूरालजिया' की बीमारी इधर बढ़ गई है। 'ऐस्प्रो' की टिकिया निगल वह कुछ स्वस्थ हुआ।

अविनाश ने सिर थामकर निश्चय किया—अब वह उस कूचे में नहीं जायगा। यह तो और भी पीड़ा बढ़ाने की वस्तु है। दर्द वहाँ और भी उभड़ जाता है।....लगता है, जैसे आशा की पूरी छाया उस लड़की पर उतर आई है...वैसी ही आकृति...आँखों में वैसा ही श्रोत!...

वह अत्यन्त भावुक होता जा रहा है। वह अब कठोर होगा, निर्मम होगा। कर्त्तव्य की ठोस भूमि पर अपने कठोर चरण रक्खेगा। भावुकता गीली चीज है। यह आदमी को अपने साथ ही गला लेती है। वह नहीं गलेगा—चूँकि वह नहीं गलना चाहता!

[बोस]

पिता आशा को देखकर चकित हुए। माँ तो रो ही पड़ी बोली—" तेरी यह कैसी सूरत हो गई रानी !"

माँ से लिपटकर आशा खूब रोई ; जी भर कर रोई। आँसू बहाने में ही जी हल्का लगा। भीतर बहुत धुँआ भर गया था।

कुछ दिन तो आनन्द से कटे। सहेलियों से मिलने में, उनके सुख-दुःख की बातें सुनने में मन कुछ बहला रहा। अनिल तो उससे सदा लिपटा ही रहता।

किन्तु यह ज्वार शीघ्र ही उतरा। आया भाटा—आई बेचैनी। अब वह क्या करे....हाय, अब वह क्या करे ?.....

सूनी घड़ियाँ काटे नहीं कटतीं। मन व्यथा से भर जाता। दिल उचट आता। किसी काम में दिलचस्पी नहीं पाती।

बैठी रहती तो बैठी ही रह जाती। महरी आकर कहती—"क्यों रानी बिटिया, बैठी क्यों हो? नहाने जाओ न।"

माँ पूछती—"बेटी, आखिर बात क्या है?"

आशा चुप रह जाती। वह क्या उत्तर दे?....अरे, वह क्या उत्तर दे?...कैसे कहे अपने जीवन की इस ट्रेजडी को? ये जो वेदना के कीट हृदय में घुस आए हैं, उन्हें वह कैसे दिखला दे? हाय, आज वह कितनी असमर्थ है!

अनिल अभी बालक है; किन्तु फिर भी देख रहा है कि उसकी दीदी के भीतर कुछ द्वन्द्व है; कुछ चोट है।

अपनी दीदी के कन्धों पर झूलकर वह पूछता है—"तुम्हें एक चीज दिखलाऊँ दीदी?...बोलो तो, यह क्या है?"

आशा देखती है...ताजे फूल हैं...गुलाब के लाल फूल!

कोई स्मृति आती है; आती है और मन-प्राण को ढक जाती है!

अनिल अचरज में आकर देखता है, अरे, उसकी दीदी की आँखों में आँसू क्यों आ गए हैं?.....

फूल फेंककर वह कहता है—"माफ करो जीजी...मैं अब तुम्हें नहीं चिढ़ाऊँगा....।"

अनिल को पास खींचकर आशा उसे अपनी छाती से लगा लेती है। लगा लेती है और फिर रुका वेग टूट पड़ता है। आँसुओं

से उसके नन्हें कपोलों को भिगोकर वह कहती है—"भैय्या मेरे...!"

इस अतिशय प्यार और आँसू का कारण अनिल नहीं समझ पाता है। वह अपनी भोली आँखें फैलाकर अपनी दीदी को ओर देखता रह जाता है।

इसी तरह आँसुओं से गीले दिन और उतप्त रातें व्यतीत हो रही हैं...

पिता बेचैन हैं। माँ कपाल पीट लेती है। दिन-दिन आशा का स्वास्थ्य गिरता ही जा रहा है। मुँह का लावण्य जाता रहा है; चेहरा पीला हो चला है।

डाक्टर कहता है—"ट्रिटमेंट अच्छी तरह होनी चाहिए....यह डेंजरस हो सकता है।"

माँ गीले स्वर में पूछती है—"तुम्हें क्या दुःख है बेटी?"

"कुछ भी तो नहीं माँ!" ओठों पर हँसी लाने का असफल प्रयत्न कर आशा उत्तर देती है।

पिता पूछते हैं—"पहाड़ घूमने चलोगी बेटी....?"

"नहीं बाबूजी, आप चिन्ता न करें....मुझे कुछ भी नहीं हुआ है।"

पिता के माथे पर बल पड़ जाते हैं। मनोविज्ञान समझनेवाले सब-जज पिता, पाइप से धुँआ छोड़कर, बहुत कुछ सोचने लगते हैं।

और ऐसे ही समय में एक तार आया है। मैनेजर ने भेजा है। "बलवन्त बाबू को टाइफर्ड हो गया है....हालत सुधर नहीं रही है।"

तार पढ़कर आशा कुछ क्षणों तक मौन रहती है ; फिर आहिस्ते कहती है—"बाबूजी, आजकी गाड़ीसे मैं वहाँ जाऊँगी...।"

पिता घबड़ाकर कहते हैं—"किन्तु बेटी...तेरी हालत भी तो अच्छी नहीं है। मैं खुद चला जाता हूँ, और पूरी हिफाजत के लिए....।"

बीच में ही टोककर आशा दृढ़ स्वर में कहती है—"नहीं बाबूजी. आज मुझे जाना ही होगा। आज मैं जाऊँगी।"

पिता कोई जवाब नहीं ढूँढ़ पाते। अन्त में वे कहते हैं—"अच्छा बेटी....चलो, मैं तुम्हें पहुँचा आऊँगा।"

आशा दृढ़ स्वर में प्रतिवाद करती है—"नहीं बाबूजी...आप नहीं जा सकेंगे। मैं अकेली जाऊँगी...अकेली आई थी, अकेली जाऊँगी भी।"

पिता कुछ कहना चाहते हैं कि आशा रोककर कहती है—"बाबूजी, यदि आप साथ चलेंगे तो मैं वहाँ तक जीती नहीं पहुँच सकूँगी।"

बात पिता के हृदय में तीर सी चुभती है। वे नहीं समझ पाते, यह आशा की कैसी 'जिद' है ? आशा तो कभी ऐसी नहीं थी...

पिता, माँ और अनिल स्टेशन तक पहुँचा गए।

सेकेंड क्लास का डिब्बा। रास्ता अधिक देर का नहीं है। दो घंटे में ही वह पहुँच जायगी।

गाड़ी खुलने के साथ ही पिता की आँखें भर आईं। आशा ने

भी आँसू रोके। अनिल के माथे पर थपकियाँ दीं। माँ का तो गला ही रुँध गया। गाड़ी ने सीटी दी ; हरी झंडी दिखलाई : और कुछ ही क्षणों में गाड़ी प्लाटफार्म को छोड़ गई।

आशा के हृदय की गति का अनुमान आज कौन कर सकता है ?...उसके हृदय के भीतर कोई निरंतर डंक मार रहा है। वह जानती है, यह तार उसके पति ने नहीं भिजवाया है। यह तो मैनेजर ने अपनी बुद्धि का उपयोग किया है। वह जानती है, उसका पति और जो करे, यह नहीं कर सकता। उसका पौरुष झुकने को नहीं बना है। वह अडिग है।...

...फिर भी वह एक हिन्दू नारी है। उसके हृदय का संस्कार आज उसे उसके स्वामी की ओर ठेल रहा है। वह सारे मान-अपमान को भूल, आज अपने रुग्ण पति के दर्शन को व्याकुल है। वह जानती है, उसके पति के हृदय के किसी कोने में, एक भयंकर चोट आई है ; और यह चोट, अनजाने, दुर्भाग्य से, उसने स्वयं दी है। आशा यह भी समझ रही है कि उसके पति का पशुत्व किसी घायल पशु की तड़प है। वह खूँखार इसलिए हो गया है चूँकि उसे काफी चोट आई है : पशुत्व इसीलिए अपनी सारी समर्थता से प्रतिशोध लेने को तत्पर है।

आशा को लगा, गाड़ी की गति के साथ ही उसके हृदय की गति भी मिल गई है।

आशा ने बँगले के भीतर जाकर देखा, उदासी है। सर्वत्र मानो

एक गहरा सन्नाटा है। वह चुपचाप पति के बिस्तर के पास जा खड़ी हुई। कमरे में धीमी रोशनी थी। उसी धीमी रोशनी में आशा ने देखा, उसके पति का मुख भयानक रूप से सादा हो गया है। सिरहाने पुराना नौकर रग्घू बैठकर सिर दाब रहा था।

पगध्वनि सुनकर बलवन्त ने आँखें उठाईं। आशा को देखकर वह कुछ देर तक देखता रहा। फिर बोला—"तो तुम लौट आईं?"

"हाँ।" कहकर आशा आगे बढ़ गई। रग्घू से बोली—"जाओ, अब तुम आराम करो।"

चूड़ियाँ खनखनाईं और एक कोमल स्पर्श से बलवन्त सिहर उठा। आशा ने कुछ चौंककर कहा—"टेंपरेचर बहुत है!"

"होगा!" कहकर लापरवाही से बलवन्त ने आँखें मींच लीं। कुछ देर तक सोचने का उपक्रम किया; फिर बोला—"मैनेजर को मैंने उसकी गलती के लिए खूब फटकारा है....उसने बिना पूछे तार दे दिया....।"

बलवन्त और कुछ कहने जा रहा था कि आशा ने उसका मुँह बंदकर कहा—"आप अभी चुप रहिए...मैं आपके पैर पड़ती हूँ ...आप इस हालत में ज्यादा न बोलें।"

बलवन्त ने करवट बदलकर कहा—"नहीं, मुझे तुम्हारी सेवाओं की जरूरत नहीं....मुझे तुम्हारा स्पर्श पसन्द नहीं...तुम मुझसे दूर हो जाओ....दूर हो जाओ!" बलवन्त चिल्ला पड़ा और कमजोरी के कारण हाँफने लगा।

आशा के चेहरे पर कोई विकार नहीं आया। वह इसके लिए प्रस्तुत थी।....इसी को छिपाने के लिए तो वह अपने पिता को साथ नहीं लाई।...क्यों वह अपने वृद्ध पिता के मर्म पर आघात पहुँचने देती ?....

आशा ने इसबार संयत स्वर में कहा—"आपको मेरी सेवाओं की जरूरत भले ही न हो, मुझे तो है। मैं क्यों चूकने जाऊँ ?"

बलवन्त ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया।

और आशा ने सारा काम अपने हाथ में ले लिया। रात आँखों में ही कट जाती। सारी सुधि भूलकर वह पति की सेवा में तत्पर हो गई।

देखते ही देखते कुछ दिनों में बलवन्त पुनः उठकर खड़ा हो गया।

[इक्कीस]

अम्मी ने नोटों को गिनकर उल्लसित स्वर में कहा—"तो परसों बात तय रही !"

सेठ पदुममल ढनढनिया की बाछें खिल गईं। उसकी मोटी बोंद हर्ष से और भी फूल उठी। एक उच्छ्वास फेंककर बोला—"तुमने बहुत इन्तजार कराया बाई !"

"कच्चा माल है सेठ !" अम्मी ने आँखें मटकाकर कहा।

उर्मिला किवाड़ के पल्ले के पीछे खड़ी हो बातें सुन रही थी। उसके कलेजे की धड़कन बढ़ गई ; आँखों के आगे अन्धेरा छा गया।

सेठ की भूखी आँखों में उसने पाया, इनमें तो उसी घिनौने बनिए का कुत्सित रंग है !

महफिल उस समय खतम हो रही थी। अधिकांश भक्त जा चुके थे। कुछ जाने की तैयारी कर रहे थे।

मास्टर रतनलाल हल्के नशे में उमरखैय्याम की कोई लड़ी गुनगुना रहे थे। उर्म्मिला ने उनका हाथ पकड़कर कहा—"आपसे मुझे एक बात कहनी है।"

मास्टर रतनलाल इस अतिशय प्रेम के कारण मिश्रो की डली हो गए। इस आयाचित सम्मान से विह्वल हो वे शेली की कोई पंक्ति दुहराना ही चाहते थे कि उर्म्मिला ने कातर स्वर में कहा—"आप मेरा एक काम करेंगे ?"

"काम ?" मास्टर रतनलाल गद्गद् हो बोले—"यदि हुक्म हो तो आकाश के तारे उतार लाऊँ...!"

उर्म्मिला ने कातर होकर कहा—"आप अविनाश बाबू को कल साथ लायेंगे ?...मैं आपके पैरों पड़ती हूँ...।"

बात सुनकर मास्टर रतनलाल चुप रह गए। फिर सिर खुजलाकर बोले—"वह तो 'प्यूरिटन' है! अब वह यहाँ नहीं आयगा...बड़ा अनोखा जीव है!"

उर्म्मिला ने बहुत ही विह्वल होकर कहा—"मैं आपके पैरों पड़ती हूँ...आप उन्हें कल जरूर लायें...जैसे भी हो...। पाँच मिनट के लिए भी...।"

मास्टर रतनलाल ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छा, कोशिश करूँगा।" और वे डगमगाते पैरों से चले गए।

दूसरी संध्या की प्रतीक्षा उर्म्मिला बड़ी आकुलता से करती रही। ...आज दिन भर वह सोचती ही रह गई है। बहुत सी बातें उसके मस्तिष्क में आई हैं...वह अविनाशबाबू से आश्रय की भीख माँगेगी...अपना सारा अतीत कहकर कहेगी—मुझे अपने चरणों में स्थान दो....मैं तुम्हारी सभी सेवाएँ करूँगी...घर बुहारूँगी.... जूठन साफ करूँगी...। यह दुःख तो मुझसे अब सहा नहीं जाता....मैं उपभोग की वस्तु बनने के बदले मर जाना अधिक पसन्द करती हूँ....यदि तुम मुझे दया की भीख नहीं देना चाहते, तो थोड़ा जहर ही ला देने की दया करो...हाय, मैं कुछ नहीं, थोड़ा जहर ही तो चाहती हूँ!....

संध्या बीती; रात हुई। रूप की हाट सजने लगी। रात ने दिन का रूप ग्रहण किया। ...तबले ठनके....नूपुर बजे....और बगल के कोठे की मंगलामुखी गा उठी—'देखो री, ना माने श्याम!'

उर्म्मिला भी गाने बैठी; किन्तु उसकी आँखें व्यग्र थीं। वे कुछ ढूँढ़ती-सी लगती थीं।

और इतने में, मास्टर रतनलाल आए। उर्म्मिला का माथा ठनका। हाय, ये तो अकेले हैं!...

पान देने के मिस वह आगे बढ़ गई। रुँधे गले से बोली—"वे नहीं आये?"

"नहीं।" मास्टर रतनलाल जरा थके स्वर में बोले।

"क्यों?" स्वर रुँआसा था।

"बहुत दिक करने पर भी वे नहीं आए। बोले—'वहाँ जाने पर मेरा सिर चकराने लगता है।'

उर्म्मिला ने रुककर पूछा—"मेरा नाम आपने कहा था ?"

सिर हिलाकर मास्टर रतनलाल ने कहा—"हाँ, कहने पर बोले, मैंने शपथ खाई है।"

उर्म्मिला का हृदय बैठ गया। आँखें छलक आईं। वह आकर अपनी जगह पर बैठ गई।

गाना आज जमा नहीं। महफिल कहकहों से पूरी गुलजार नहीं हो सकी। अम्मी ने उर्म्मिला का चेहरा देखकर पूछा— "जी भारी है बेटी ?"

उर्म्मिला ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

इधर दो-चार दिनों से अम्मी का प्यार और ज्यादा बढ़ा हुआ था। तुरत ही आर्द्र होकर बोली—"तो रहने दे बेटी....आज गाना नहीं होगा।"

तबलची ने हाथ रोक दिए; सारँगीवाले ने हाथ खींच लिए। भक्तों ने एक दूसरे को देखा और फिर उठ खड़े हुए। उनका मन खिन्न हो गया था और इस खिन्नता को मिटाने के लिए वे दूसरी देवी के मन्दिर की ओर चले!

सब के जाने के बाद उर्म्मिला अपने कमरे में गई और कमरा बन्दकर अंजलि में मुँह छिपा सिसक उठी।....बहुत देर तक सिसकती रही। हृदय में आज फिर ज्वार था....वैसी ही ज्वार जो एकदिन उसके सर्वनाश के दिन आया था....

...कल वह उस कामी सेठ की अंकशायिनी बनेगी ?...हाय, क्या वह इस तरह अपनी लज्जा को बिकती देखेगी ?...एक बार एक पिशाच ने उसकी सहानुभूति की भावुकता से नाजायज फायदा उठाकर उसका सर्वनाश कर डाला था...अब क्या वह सभी के उपभोग की वस्तु बन जायगी ?....

....एक ध्रुवतारा उसे अपने अंधकारमय जीवन में दिखलाई पड़ा। वह उल्लसित होकर उस ओर बढ़ी : किन्तु हाय ! यह भी तो मृगतृष्णा ही प्रमाणित होकर रही !

बहुत रात तक वह बहुत-सी बातें सोचती रही। दीवार-घड़ी ने चार बजने की सूचना दी। उर्म्मिला चौंककर उठ खड़ी हुई। आज की रात बीतने पर दूसरी रात उसके लिए नरक की रात होगी।

आहिस्ते वह कमरे से बाहर चली आई। जीने से उतरकर नीचे आई : बाहर अम्मी का खूँखार गुंडा सोया था। उर्म्मिला की छाती धड़क उठी। कहीं यह आहट सुन ले...

साहस बटोरकर, बहुत ही दबे पैरों से, वह मकान के बाहर हो गई। बाहर आते ही हवा का ताजा झोंका लगा। उर्म्मिला की धड़कन कुछ कम हुई। वह बढ़ती गई...बढ़ती ही गई।

आज, प्रायः आठ महीने बाद, वह इस कैद के बाहर थी !

× × × ×

प्रभात की लाली चारों ओर फैल चुकी थी। पूरब के आकाश में कुंकुम बिखर गए थे।

आशा की नींद आज सबेरे ही टूट गई थी। एक डरावना स्वप्न

उसने देखा था।...उसने देखा कि वह किसी पहाड़ की चोटी पर खड़ी है। नीचे देखने को ज्यों ही वह झुकती है, हठात् पैर फिसलते हैं...पैर फिसलते हैं और एक कड़ी चीख के बाद वह भूमि पर गिरकर चूर-चूर हो गई है! अत्यन्त करुण चीख के साथ ही नींद टूट गई। देखा, सुबह का आकाश साफ होता जा रहा है। वह बैठकर सोचती रही—बहुत देर तक सोचती रही।—यह सुबह का सपना था! उसने अपने पति की ओर देखा—बलवन्त अब भी खर्राटे ले रहा था। उसकी नींद में आशा की चीख ने व्याघात नहीं पहुँचाया था।

पाइप के जल से कपाल और आँखें धोकर वह बाहर निकल आई। बँगले के कंपाउंड में टहलती रही। मुँह पीला पड़ गया था। शरीर कृश हो चला था। टहलते हो समय आशा ने देखा, एक उन्नीस-बीस वर्ष की लड़की उसकी ओर एकटक देख रही है। शायद वह ठिठककर कुछ सोच भी रही है।

आशा ने आगे बढ़कर पूछा—"क्या चाहती हो?"

लड़की चुप रही।

आशा ने आश्चर्य्य से देखा—लड़की सुन्दर है और उसके मुख की आकृति बहुत कुछ उससे ही मिलती-जुलती है!

आशा ने फिर पूछा—"यहाँ क्यों खड़ी हो?"

लड़की फिर भी मौन रही।

इस बार आशा जरा जोर देकर बोली—"तुम चाहती क्या हो?"

"आश्रय !" लड़की का गला रूँध उठा।

"आश्रय !" आशा को उसके उच्चारण से कुछ कुतूहल हुआ।

"तुम्हारे अपने आदमी नहीं हैं ?"

लड़की सिर हिलाकर बोली -- "नहीं।"

"अन्दर आओ।" आशा की सहानुभूति उमड़ आई।

अपने पास बुलाकर आशा ने पूछा—"तुमतो भले घर की लड़की मालूम पड़ती हो !"

वह चुप रही।

"सचमुच दुनिया में तुम्हारा कोई नहीं है ?"

"नहीं।"

आशा और प्रश्न न पूछ सकी। बोली—"चलो, तुम्हारी कहानी पीछे सुनूँगी।"

इतने में बलवन्त निकला। वह टहलने जा रहा था। आशा को एक लड़की के साथ देखकर वह प्रश्न की आँखों से उसे देखने लगा।

आशय समझकर आशा ने कहा -- "इसे मैंने अपने लिए रक्खा है।"

बलवन्त सुनकर आगे बढ़ गया। अधिक पूछना उसके स्वभाव के विरुद्ध है।

...और उस दोपहरी में उस लड़की ने अपनी जो करुण और मर्मस्पर्शी कहानी सुनाई, उससे आशा की आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं ; साथही कपोल भी भींग गए !

[बाईस]

उपर्युक्त घटना के कुछ ही दिन बाद कुल्ला करते समय आशा के मुँह से बहुत सा खून निकल पड़ा।

रग्घू वहीं चाय के प्याले धो रहा था। चिल्लाकर बोला—"यह क्या बहूजी....?"

तबतक आशा बेहोश हो चुकी थी।

खबर बलवन्त को लगी। वह सुबह का अखबार देख रहा था। पहले तो कुछ क्षणों तक वह रग्घू का मुँह देखता रह गया। फिर अखबार फेंककर उठ खड़ा हुआ। डाक्टर को फोन किया। स्वयं आशा के सिरहाने जा खड़ा हुआ।

डाक्टर ने आकर परीक्षा ली और फिर गंभीर होकर वह बाहर

निकल आया। बलवन्त के फीके चेहरे की ओर देखकर बोला—"आश्चर्य्य है मिस्टर बलवन्त! आपने अपनी पत्नी का इलाज पहले नहीं करवाया?...यह तो थाइसिस का आखिरी स्टेज है!"

"थाइसिस!" बलवन्त ने डाक्टर के मुखपर अपनी आँखें गड़ा दीं।

डाक्टर चुप था।

बलवन्त ने आकुल होकर कहा—"डाक्टर, क्या अब कुछ भी नहीं हो सकता?...आप जितना कहिए मैं खर्च करने को तैयार हूँ..."

"मुझे खेद है मिस्टर बलवन्त,...यह मेडिकल-सायंस के बाहर की बात है।" कुछ रुककर डाक्टर ने कहा—"मैं आपको झूठा विश्वास देना नहीं चाहता...फिलहाल मैं प्रेसक्राइब कर देता हूँ... शायद सप्ताह दो सप्ताह लिंगर कर जाँय।"

डाक्टर चला गया।

कई घंटों के बाद आशा की आँखें खुलीं। उसने देखा—उसके पति डबडबाई आँखों से उसकी ओर देख रहे हैं!

आशा ने यह दृश्य देखकर आँखें मीच लीं।

बलवन्त भर्राए गले से बोला—"रानी!"

आशा को शब्द अमृत की तरह शीतल लगा।

"रानी!...तुमने मुझे यह सजा दी!...मुझे तुमने नहीं पहचाना रानी!"

आशा की आँखें छलछला आईं। बहुत ही धीमे स्वर में वह बोली—"मैं तुम्हें जानती हूँ देव !....मैं तुम्हारे योग्य न थी !"

आज पत्थर बलवन्त मोम बन गया था। वह अपनी सारी भावुकता के साथ आज आशा के सामने कातर था।

"रानी, तुम्हें तड़पाने से अधिक मैं तड़पा हूँ। काश, तुम मेरे हृदय का तूफान समझ पातो...!"

आशा की डबडबाई आँखें छलक पड़ीं।

कुछ देर तक कमरे में पूरी निस्तब्धता रही।

बलवन्त ने कहा—"रानी, मैं बाजी हार गया हूँ !...अविनाश को बुलाने जाता हूँ।"

आशा चौंक गई। वह भी यही कहने की सोच रही थी। अपने जीवन-दीप को सदा के लिए बुझने के पहले, सारी लज्जा छोड़, वह एकबार भर आँखों से 'उसे' देखना चाहती थी।

थोड़ी देर बाद ही बलवन्त अविनाश को लेकर लौटा। आज बलवन्त के चेहरे पर एक अभूतपूर्व निर्मलता थी। मुख निर्विकार था। आँखें शान्त थीं।

अविनाश को देखते ही आशा के पास बैठी हुई लड़की के मुँह से एक हल्की चीख निकल गई।

आशा ने अपने रक्तहीन अधरों से किंचित मुस्कुराकर कहा—"बहुत मौके से पहुँचे अविनाश...!"

अविनाश स्तंभित रह गया।

आशा ने धीरे से पूछा—"मेरी एक अन्तिम प्रार्थना मानोगे अविनाश...?"

स्वर जैसे अविनाश के हृदय को छेद गया।

आशा ने आहिस्ते फिर कहा—"उर्म्मिला की कहानी में तुम्हारा नाम पाकर मैं समझ गई थी कि वह तुम्हीं हो।...तुम्हीं तो ऐसा कर सकते थे!...आज मेरी आखिरी बात मानोगे अविनाश...?"

अविनाश जैसे रो पड़ेगा!

"इस लड़की को तुम्हारे आश्रय में देती हूँ....उर्म्मिला के पिछले इतिहास को तुम इसीके मुँह से सुन लेना...। किन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि यह लड़की संसार के ऊँचे से ऊँचे स्थल पर है... आज हमारे संस्कार की कड़ियाँ टूट रही हैं, यह तो तुम जानते ही हो...उर्म्मिला में तुम मुझे ही पाओगे..."

और खाँसी शुरू हुई जो आशा को अधिक बोलने का मौका नहीं दे सकी। वह मूर्च्छित हो गई ....

शेष-कथा

ठीक एक वर्ष बाद की बात है।

उर्म्मिला आशा के चित्र को सजाकर उस पर फूल बिखेर रही थी। धूप-दीप जल रहे थे और उर्म्मिला आँखों में आँसू भर चित्र की ओर देख रही थी।

'आशा' का 'नववर्षाङ्क' लिए अविनाश पहुँचा। बोला—"आज आशा की निधन-तिथि पर, अपने पत्र का यह प्रथम विशेषांक निकाल सका हूँ, उर्म्मि!"

उर्म्मिला ने चित्र को भक्ति-भाव से प्रणामकर कहा—"आशा दीदी आज नहीं हैं, किन्तु 'आशा' के संदेश तो आज सारे भारत में गूँज रहे हैं।"...

अविनाश ने फूलों में से गुलाब का एक लाल फूल चुनकर चित्र पर चढ़ा दिया। पूछा—"उर्म्मि, देखो तो, आशा के पास, यह गुलाब का फूल कैसा दीख रहा है?"

चित्र की ओर मुग्ध दृष्टि से देखकर उर्म्मिला ने चकित होकर देखा—प्रश्नकर्त्ता के नयन गीले हो उठे हैं!

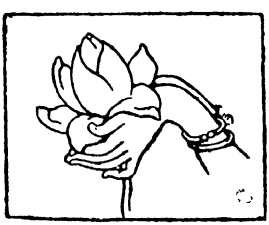

तरुण कथा-शिल्पी श्रीराधाकृष्ण प्रसाद लिखित पुस्तकों पर कुछ मान्य सम्मतियाँ

देवता : "राष्ट्र के इस क्रान्तिकाल में जब हम एक नवजीवन का स्वप्न देख रहे हैं, इस प्रकार के साहित्य का लिखा जाना मंगल का द्योतक है।"—**'साहित्य-संदेश'**

"कहानी-कलाके प्रेमी इसे अवश्य पढ़कर देखें।"—**'सुधा'**

विभेद : "प्रस्तुत कहानी-संग्रह इस बात का उदाहरण है कि जब-तब हिन्दी में भी अच्छी कहानियाँ निकल आया करती है।"—**'साहित्य-संदेश'**

कथानक का तरल प्रवाह···जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण, पात्रों की सजीवता, भाषा में बल। हमारे मन में 'विभेद' के लेखक की अनुभूतियों के प्रति विशेष आदर है।"—**'हंस'**

"इसको पढ़कर मोह-मूर्च्छित लोगों का मन सचेत हो जायगा। वे सोच सकेंगे कि दर असल हम कहाँ हैं और आज का सच्चा अधिक-मानव कहाँ है।" **'कहानी' नववर्षाङ्क**

"प्रत्येक कहानी चुभती हुई और बड़ी प्रभावोत्पादक है।"—**—'विश्वमित्र'**

अन्तर की बात

"बहुत ही सधे हुए हाथों की साफ-सुथरी कारीगरी।"

—शान्तिप्रिय द्विवेदी

भाषा सुन्दर और सरल, लिखने का ढँग निराला तथा कथानक का सुन्दर प्रवाह।" **—'किशोर' : पटना**

"बिहार के कथाकारों में राधाकृष्ण प्रसाद का अपना स्थान है। आपकी कहानियाँ जी को छूती हैं, क्योंकि उनमें जीवन का रूप नहीं, जीवन रहता है। वह जीवन, जो दुख-दर्द, आशा-निराशा के सरोवर में शतदल सा खिलता है। आपकी छोटी कहानियाँ गागर में सागर होती हैं। लेखक ने जीवन को देखा और पढ़ा ही नहीं है, उनमें प्रवेश किया है।"

—'ऊषा' नववर्षांक [हंसकुमार तिवारी]

".....I am sure that you possess some flair for writing short-stories....."

—Kishore Sahu : Bombay.

"श्रीराधाकृष्ण प्रसाद बिहार के एक प्रगतिशील कथाकार हैं। आपकी कहानियों के तीन संग्रह 'देवता' 'विभेद' और 'अन्तर की बात'—निकल चुके हैं। आपकी कहानियाँ सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं।"

—पटना-युनिवर्सिटी साहित्य-पाठ

श्रीराधाकृष्ण प्रसाद (आरा) नवयुवक कथाकारों की टोली में अग्रदूत की भाँति अगली पाँती पर नायकत्व का झंडा लिये खड़े हैं। आपकी कहानियाँ 'सादगी और सुन्दरता' के नमूने हैं।"

—जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ

"आप बड़े सधे हुए हाथों से थोड़े में बहुत साफ चीजें लिखते हैं। उज्ज्वल कमल की तरह आपका कथानक अन्तःकरण की सजल तलहटी को स्पर्श करता है।"

—'कमला' नववर्षांक [शान्तिप्रिय द्विवेदी]